शान्ति-सन्देश

पूर्णाङ्क ६१ | जनवरी १९५६ पौष २०१२ | वर्ष ६ अंक १

Satyadeo Sah "Santrena"
VILL. BELABADAR, P.O. PIPARA.
(PURNEA).

विनती

● स्वामी मेंहीं दास जी महाराज ●

गुरु मम सुरत को गगन पर चढ़ाना ।
दया करके सतधुन की धारा गहाना ॥
अपनी किरण का सहारा गहाकर ।
परम तेजो मम रूप अपना दिखाना ॥
साधन भजन हीन मों सम न कोऊ ।
मेरी इस दुर्बलता को प्रभुजी हटाना ॥
पापों के संस्कार जन्मों के मेरे ।
हैं जो दया कर क्षमा कर मिटाना ॥
तुम्हारा विरद गुरु है पतितन को तारन ।
अपनो विरद राखि "मेंहीं" निभाना ॥

अभिनन्दन-पत्र

अखिल भारतीय संतमत के वर्तमान आचार्य श्री श्री १०८ परमसंत स्वामी 'मेंहीं' दास जी महाराज के कर कमलों में सादर समर्पित !

धरहरा के समादरणीय नर-पुंगव !

सिकलीगढ़ धरहरा के पुण्य-तीर्थ में आप जैसे आराध्य देव का अभिनन्दन करते हुए हम ग्रामीण प्रेम-विह्वल हो रहे हैं। हिरण्या की पुण्य-तटी में, युग-युग से प्रवाहित होती अनेक संस्कृति-धारा के संगम पर 'परम संत' को पाकर, हम आत्म-विभोर हो उसी प्रकार संज्ञाहीन-से हो रहे हैं, जिस प्रकार किसी कुटिया के अन्तरिक्ष में अपने 'प्रिय जन' को पाकर हर्षातिरेक से उसके प्राणी बेसुध हो जाते हैं। अपने गृह में समागत अतिथि के स्वागतार्थ शिष्टाचार और तड़क-भड़क की अपेक्षा की जाती है, पर जो 'अपना' है, उसके लिए शिष्टाचार और टीमटाम जैसे कृत्रिम साधन की अपेक्षा क्यों? और सच मानिए, इस प्रकार स्वागत-सत्कार के प्रसाधन को एकत्रित कर हम अपने हृदय को आत्मतोष से भुठलाना नहीं चाहते। आज यह धर्म-नगरी एक महान संत के रूप में अपने 'लाल' को पाकर अवश्य ही गौरव की अनुभूति से अभिभूत है, जिस प्रकार अपनी सोंधी मिट्टी में अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित विशाल वट वृक्ष की गरिमा को अनुभूत कर माँ-धरती की छाती गर्व से फूल उठती है। इसी गढ़ की घाटी से अविर्भूत सिद्धार्थ गौतम विश्व का भगवान बुद्ध बनकर जब कपिलवस्तु लौट आये थे, तब उस नगरी के आबाल-वृद्ध नर-नारी ने भाव-विभोर हो उनके चरण-कमल पर प्रेमाश्रु-धारा अर्पित की थी। आज धरहरा ग्राम के शत-शत जन भी स्पंदित हृदय और उच्छ्वसित कंठ से आप के चरणों पर श्रद्धा-सुमन अर्पित कर रहे हैं। आज हमारे हृदयान्तर में श्रद्धा की गंगा, स्नेह की यमुना और अपनत्व की सरस्वती त्रिवेणी बन कर प्रवाहित हो रही है।

विराट बिहार की परम्परा के संवाहक !

आज जो प्रान्तर 'बिहार' की संज्ञा से अभिहित है, वह चिर-युग से मानवता को नवनत्र संदेश देता आ रहा है। इसी भूमि खण्ड में अनेक धर्म-प्रवर्त्तकों और प्रचारकों, दार्शनिकों और विचारकों, संतों और ज्ञानियों का आविर्भाव हुआ है। महावीर वर्द्धमान और भगवान बुद्धदेव का यह बिहार सतत धार्मिक आन्दोलन को अपने प्राणों का बल देता आ रहा है। भारत की सीमा से अति दूर विश्व के हर प्रान्तर को बौद्ध धर्म का अभिनव संदेश दिया था, सम्राट अशोक ने। आपने भी भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में संतमत के ज्ञान-प्रदीप से स्निग्ध ज्ञानालोक का प्रसार किया है। हे संत! आप भी बिहार को इस धर्म-परम्परा की पवित्र धरोहर-

सा ढोये चले जा रहे हैं, अविराम गति से ।

भारत के महान् संत!

आर्यावर्त्त की सप्त-सिन्धु घाटी में सर्वप्रथम आर्य-ज्ञान का उन्मेष हुआ था और उसी समय से उपनिषद्, पुराण, जातक कथा के इस देश में अनेकानेक ऋषि-मुनियों, साधु-संतों, सिद्ध और योगियों ने मानवता को जीवन का दिव्य-संदेश दिया है। उनका मार्ग-निदर्शन किया है और उन्हें विश्व का रहस्य बतलाया है। हे महान सन्त! आप भी अपने पूर्वजों की दिव्य प्रेरणा से अभिप्रेरित हैं। चरम भौतिकता के इस युग में सन्त 'मेंहीं' धर्माकाश के सजल 'मेह' बनकर आध्यात्मिकता के स्निग्ध जलकण से अखिल भारत को अभिसिञ्चित कर रहे हैं। आप जड़ मानव को अतिसुलभ सुगम मार्ग की ओर संकेत कर रहे हैं कि 'आत्म जगत' में ही 'प्रणव' का 'महा स्फोट' हो रहा है। मानस-जाप, मानस-ध्यान दृष्टि साधन और सुरत-शब्दयोग द्वारा प्रत्येक जन उस 'परम पुरुष' का साक्षात्कार कर सकते हैं। आज आप जैसे सिद्ध पुरुष से योग-युक्ति पाकर लक्ष-लक्ष जन अपने गंतव्य स्थान की ओर जा रहे हैं। गीता का यह धर्म-घोष आज इस अंचल में सिद्ध हो रहा है कि धर्म के पुनरुत्थान के लिए भारत में युग विशेष में व्यक्ति विशेष का उदय होता है।

राष्ट्र-भारती के संत-साहित्यकार !

मां भारती के चरणों पर अनेकानेक ज्ञात-अज्ञात संत हृदय की समस्त श्रद्धा के साथ भाव-निर्माल्य चढ़ाते चले आ रहे हैं। हिन्दी भाषा के काव्य-साहित्य की सुदीर्घ परम्परा देश के जातीय जीवन की समस्त समाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृतियों की संवाहिका रही है। कबीर सूर,तुलसी जैसे महान कवि नहीं, वरन युग-पुरुषों ने जिस हिन्दी-साहित्य-मन्दिर को अपनी संत वाणी से अभिसिक्त किया, नानक, दादू, रैदास ने अपनी मंगल-वाणी से जिसकी गरिमा की अभिवृद्धि की, उसी वाणी को आप जैसे संत-साहित्यकार साजते-संवारते चले आ रहे हैं। स्वान्तः सुखाय कला, कला के लिए साहित्य की सर्जना आप नहीं करते, पर साहित्य जीवन के लिए, आध्यात्मिक जीवन को कलात्मक रूप से गढ़ने के लिए। यही पूत भावना आपके साहित्य-निर्माण के मूल में काम कर रही है। आप के साहित्य-सागर में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की त्रिपथगा बहती है।

शान्ति के अग्रदूत!

युद्ध जर्जर संसार के लिए सुरक्षा का एक मार्ग है— शांति का मार्ग, धर्म का मार्ग। पर शांति की स्थापना किस प्रकार हो सकती है? 'पंचशिला' के सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम कर सकता है पर चिरशान्ति की प्रतिष्ठा नहीं। 'पंचशिला' राष्ट्र के आचरण के लिए एक सामयिक विधान है, पर राष्ट्र का निर्माण शून्य से नहीं, मानव-समूह से होता है। अतः मानव के पूत आचरण के लिए ऋषि मुनियों का आदर्श विधान ही सच्चा मार्ग है। सद्गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सच्चा ज्ञान से अभिसिक्त होकर धर्म-कर्म निरत मानव ही सच्चे अर्थ में शांति की स्थापना कर सकते हैं। हे शान्ति के अग्र-

(शेष पृष्ठ ११ पर)

अखिल भारतीय सन्तमत सत्संग का ४८ वां विशेषाधिवेशन (सिकलीगढ़, धरहरा)

(स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री चन्द्रनारायण मल्लिक जी का अभिभाषण)

पूज्यास्पद परम संतमत एवं
समादरणीय सत्संग प्रेमियो !

हिरण्या-तट की इस पुण्य-भूमि में समागत सत्संग प्रेमियों का स्वागत-सत्कार करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। आप सन्तों के चरण रज का मनसा प्रक्षालन कर हमारा मनमयूर प्रमत्त हो उठा है। आज हम अपने जीवन-को पूर्णतया सफल मानते हैं। जिनके पदपद्म-पराग को संस्पर्श कर वसुधा परमानन्द की अनुभूति से धन्य-धन्य हो जाती है, उनकी सेवा का यह स्वर्ण अवसर परम सौभाग्य की बात है। आप के स्वागत का भार किसी मनिषी-संत सज्जन को ही उठाना चाहिए था जिनका इस अंचल में अभाव नहीं है, किन्तु उन्होंने कृपा कर केवल प्रेम के नाते मुझ जैसे दीन अकिंचन अज्ञानी के निर्बल कंधों पर दे दिया है। जीवन में इस प्रकार का संयोग बार-बार नहीं आता। इसी लालच से कि कम से कम कुछ ही क्षण सही, आप सन्तों के समागम का लाभ मुझे उपलब्ध हो सकेगा, मैंने इस गुरुतर भार को ग्रहण किया है। संतवाणी की सरस्वती में अवगाहन कर जीवन की कलुषता को धो डालने का लोभ जहां एक ओर हमें हो रहा है वहां दूसरी ओर आप संतों की समुचित सेवा सत्कार में अपनी अकिंचनता और विपन्नता पर संकोच भी हो रहा है। अपने सपने को साकार रूप देने में अपनी असमर्थता पर कलाकार जिस जिस प्रकार कुंठित होता है समुचित व्यवस्था के अभाव और त्रुटियों के कारण हम भी उसी प्रकार क्षुब्ध हो रहे हैं। पर हमारे हृदय में आज ठीक उसी तरह के भाव उदित हो रहे हैं जिस प्रकार ज्ञान-कर्म-योग की त्रिवेणी गीता के श्री कृष्ण का स्वागत करते हुए बिदुर को। "संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाव सनेह" हम अपनी सारी त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हैं।

आज जिस धरहरा प्रांगण में "चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर" चरितार्थ है, उसका नाम अत्यन्त ही अर्थ व्यंजक है। "धरहरा" का शाब्दिक अर्थ है स्तूप, टिला आदि। युग-युग से हिमालय-सा उन्नत मस्तक किये सिकलीगढ़ प्राचीर का वह 'स्तूप' इस नाम की सार्थकता को उद्घोषित कर रहा है। वास्तविकता है यह भूमि खण्ड स्वर्णिम अतीत की गरिमा और ऐतिहासिक वैभव से मंडित है। इसकी पवित्र धूलि में युग-युग का इतिहास मूर्छित-सा लोट रहा है। उस अंचल से संबंधित अनेकों किंवदन्तियां सत्यासत्य को छिपाये शत-शत जन में प्रचलित हैं। हिरण्या की क्षीण धारा प्रागैतिहासिक काल से जोड़ती हुई हिरण-

कश्यपु की कहानी कह रही है। हिमालय के हिम के समान श्वेत केश राशि से युक्त वयोवृद्ध अपनी छाती में यह अटूट विश्वास ढोये जा रहे हैं कि गढ़ के इसी स्तूप को विदीर्ण कर नृसिंह भगवान का अवतार हुआ था। भारत-वर्ष के इतिहास में गुप्त काल हिन्दुओं का स्वर्ण-काल कहा जाता है। कुछ पुरातत्व वेत्ताओं की मान्यता है कि सिकलीगढ़ के प्राचीर का निर्माण २००० वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त द्वितीय ने किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय 'शकारि' की उपाधि से विभूषित थे। शायद इसी लिए उनके द्वारा निर्मित यह गढ़ "शकारिगढ़" कहलाता था। पीछे यवन आक्रमणकारियों ने शकारिगढ़ को "सिकलीगढ़" घोषित कर दिया—(कॉलेज कार्य-विवरण बनमनखी पृष्ट ५)। धरहरा के पार्श्व में जीर्ण-शीर्ण शिव मन्दिर और भगवती स्थल इस मान्यता के प्रबल प्रमाण हैं। निलहा कोठी के गौरांगों द्वारा इस गढ़ की जो खुदाई हुई थी उससे शिव पार्वती के स्वर्ण सिक्के प्राप्त हुए थे। और खुदाई करने वालों पर सरकार की ओर से मुकदमा भी चलाया गया था।

द्वितीय-महायुद्ध के पूर्व १९३७ ई० में श्याम देश का एक अन्वेषक भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों में अवस्थित भिन्न-भिन्न धरहरा ग्रामों का निरीक्षण करते हुए यहाँ पर पहुँचे थे। उनके कथनानुसार जंगल में यात्रा करते समय प्रातः स्मरणीय माया देवी के गर्भ से भगवान बुद्ध इसी ग्राम में अवतीर्ण हुए थे। श्याम देश के पुस्तकालय में अभी भी ऐसी प्राचीन धार्मिक पुस्तकें वर्त्तमान हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि बुद्धदेव का जन्म धरहरा नामक ग्राम में हुआ था जिसके पार्श्व को छूती हुई एक नदी प्रवाहित होती थी और दो मील की दूरी पर उत्तर-पूर्व कोने में एक पोखरा था। आज भी वह 'सुखिया' पोखर और हिरण्या नदी वर्त्तमान हैं। इतिहास-सम्मत घोर वन में बुद्ध-देव का जन्म और श्याम देश के प्राचीन धार्मिक पुस्तकों के तथ्य हमें इसी तरह के निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं। पर इतना तो निर्विवाद है कि वर्त्तमान धरहरा सिद्धों और बौद्ध आचार्यों का शताब्दियों तक सिद्धि-पीठ रहा है। गढ़ से प्राप्त बुद्धदेव की मूर्तियाँ और कुछ ईंटें यहाँ के सत्संग मन्दिर में सुरक्षित रखी हुई हैं जो इस मान्यता के पर्याप्त प्रमाण हैं। यहां के प्राचीर, पुरानी ईंटें और प्राप्त छोटी बड़ी मूर्तियां खुदाई और खोज के लिए हमें सर्वदा आमंत्रित करती रहती हैं।

सिद्धों और आचार्यों के इस ज्ञानपीठ का विक्रमशिला विश्वविद्यालय से गहरा सम्बन्ध था। विक्रमशिला और धरहरा की एकसी ईंटें इस सूत्र का इजहार कर रही हैं। इतिहास प्रसिद्ध अनेक आचार्यों, सिद्धों और ज्ञानियों का महान केन्द्र इस भूभाग के ठीक आमने-सामने गंगा के दक्षिण किनारे पर अवस्थित था जहां ज्ञान का प्रकाश इस भूमि को कई दशकों तक मिलता रहा। और जब इस ज्ञान केन्द्र से आचार्यों का प्रथम दल दिव्य सन्देश देने तिब्बत गया था, तो इसी मार्ग से उसे गुजरना पड़ा था और बाद में भी यही एक मार्ग था जिसपर चलकर हजारों तिब्बती ज्ञानार्थी ज्ञान-पिपासा मिटाने इस

केन्द्र में आया जाया करते थे। और अन्त में ग्यारहवीं शताब्दी में विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा जब विश्वविद्यालय ध्वस्त कर दिया गया उसके विशाल पुस्तकालय में आग लगा दी गयी और कितने आचार्य और छात्र इस आग में झोंक डाले गये, तब उनमें से कुछ ने रातों रात गंगा पारकर सदा के लिये तिब्बत की राह पकड़ ली, कुछ ने हिमालय की घाटी में शरण ली और कुछ इसी भूभाग के घनघोर वनों में अपने को छिपाते हुए जनता के बीच अलख जगाते रहे। उन्हीं आचार्यों और सिद्धों का सबसे अधिक असर यहां की संस्कृति पर पड़ा है। इस गढ़ पर तो यथार्थ शासन बौद्धकालीन उन आचार्यों और भिक्षुकों, योगियों और सिद्धों का रहा जिन्होंने लगभग एक हजार वर्ष पर्यन्त इस स्थान को केन्द्र मानकर ज्ञान का प्रकाश प्रसारित किया था। मुसलमानी काल में इसको प्राचीन परम्परा को नष्ट करके यहां शासन केन्द्र स्थापित करने की उनकी कई असफल कोशिशें हुईं, किन्तु यहां का साधु वातावरण उनके कठोर कर्म के लिये अनुकूल साबित नहीं हुआ। संतों की प्राचीन परम्परा यहां कभी नष्ट न हुई, चौरासी सिद्धों और नाथ-पंथियों तथा कबीर, नानक, तुलसी, सूर मीरा, दादू, ज्ञानदेव, तुकाराम, चैतन्य, रामकृष्ण आदि महान सन्तों ने भारतभूमि में जो परम्परा कायम की थी, उसी की एक कड़ी बनकर आधुनिक भारत के महान संत स्वामी मेंहीं दास जी का उदय इसी गढ़ की घाटी में हुआ (कालेज कार्य विवरण बनमनखी पृष्ट ६) पूर्णियाँ जिलान्तर्गत बनमखी आज का एक उन्नतिशील नगर है। यह नगर जिस प्रान्तर में स्थापित है, वह धर्मपुर के नाम से प्रख्यात है। धर्मप्राण 'धर्मपुर' की संज्ञा ही उसकी धार्मिक भावना और विशिष्टता का परिचायक है। इस नगरी की पारली भूमि में जितने गाँव हैं, उनके नाम से ही धर्मभाव की घोषणा होती है। देखिये न, इसके पास ही जानकीनगर, वृन्दावन, मधुवन, गोविन्दपुर, रामनगर, हनुमाननगर, शिवनगर; हरिपुर; महादेवपुर, गोकुलपुर विष्णुपुर, ब्रह्मज्ञानी तथा अन्य बस्तियाँ हैं जो धार्मिकता के द्योतक हैं। ऐसा ज्ञात होता कि पूर्णियां जिला के इस धर्मपुर अंचल होकर जिस समय कोशि की नदी प्रवाहित होती थी, उस समय यह भूमि-खंड एक तपोवन सा था और साधना के अनुसार विविध स्थानों का नाम उसके अनुरूप ही रखा गया था।

महान संत स्वामी मेंहीं दास जी का जन्म इसी गाँव के धार्मिक भावना से अभिभूत सामान्य कायस्थ परिवार में हुआ था। महाराज पलटू दास जी ने कहा है कि "सतगुरु सिकली गर मिलें, तब छुटै पुराना दाग" —(सत्संग योग पृष्ठ १६२)। पलटू दास जी का 'सिकलीगर' भले ही दूसरे अर्थ का द्योतक हो पर इस पंथ के लिये तो इस पंक्ति में एक भविष्यवाणी की घोषणा छिपी हुई थी। जिस समय में वे पूर्णियां जिला स्कूल में ज्ञानार्जन कर रहे थे, उस समय अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त कर, सरकारी पदों को सुशोभित कर सम्मान और सम्पत्ति का अर्जन वे कर सकते थे पर विधना का कुछ दूसरा ही विधान था। उसी समय से वे जिस ज्ञान की खोज में निकले, आज उसी ज्ञान की

रश्मि से सिर्फ यह ग्राम और यह अंचल ही ही नहीं वरन् सारा भारत देदीप्यमान हो रहा है। १९१० ई० में धरहरा की एक झोपड़ी में इस पंथ के जिस सत्संग मंदिर की स्थापना हुई थी, आज वह विशाल मठ में परिवर्तित हो गया है और उस कुटीर से जिस धर्मचक्र का प्रत्या-वर्त्तन हुआ उसने अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया है।

इतना ही नहीं इस भूमि के रजकण ने जिसे स्पर्श किया वही सोना बन गया। जो बनमनखी आज से २८ वर्ष पूर्व निर्जन और वीरान था, पर जो आज व्यापार की एक बड़ी मंडी है, उसकी बुनियाद में सिकलीगढ़ के वे अनगिनत ईंट और पत्थर जुड़े हैं, जिन्हें सिद्धों और ज्ञानियों ने अपने चरणस्पर्श से पवित्र कर रखा था। उसी बुनियाद पर इस प्राचीन ज्ञानपीठ से ज्ञान की प्रेरणा पाकर ज्ञान का एक नवीन केन्द्र खड़ा करने का निश्चय इस अंचल की जनता ने किया जिसका परिणाम वर्तमान बनमनखी कॉलेज है। इस भूमि खंड की पृष्ठ भूमि के अनुकूल ही इस कॉलेज की अपनी विशि-ष्टता है। शायद यह भारत का प्रथम कॉलेज है जहां छात्रों के लिए श्रमयज्ञ में भाग लेना अनिवार्य है।

महान संत स्वामी मेंहीं दास जी महाराज जिस प्राचीन परम्परा की एक वर्त्तमान कड़ी हैं, उसका मूल स्रोत वेद और उपनिषद है। धर्म प्राण भारत के धर्मशास्त्रों में भी यत्रतत्र सूत्र रूप में "ज्ञान तथा योग-युक्त भक्ति" का प्रति-पादन हुआ है उसे भगवान बुद्ध, भगवान शंकरा-चार्य, महायोगी गोरखनाथ, संत कबीर, गुरु नानक साहब, दादू साहब, गोस्वामी तुलसी दास, भक्तवर सूरदास, सन्त ज्ञानेश्वर, राधा स्वामी साहब, श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, सन्त तुलसी साहब, बाबा देवी साहब आदि ने उसकी महिमा का गान किया है। श्री मद्भागवत गीता रहस्य में लोकमान्य तिलक लिखते हैं— "सारे मोक्ष धर्म के मूलभूत अध्यात्म ज्ञान की परंपरा हमारे यहां उपनिषदों से लगाकर ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास, कबीर दास, सूरदास, तुलसीदास आदि आधुनिक साधु पुरुषों तक अव्याहत चली आ रही है।"

इतिहास के जिस सुदीर्घ युग में दक्षिण भारत में श्री महाशंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री माधवाचार्य और श्री वल्लभाचार्य की शिष्य परम्परा द्वारा लोक-जीवन में भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिपथगा बहायी जा रही थी, उसी समय उत्तर भारत के लोक जीवन के सामान्य तल से उठने वाले एक नये स्वर्ण कमल की आभा फूट रही थी। लोक जीवन के सामान्य स्तर पर खड़े होकर, उसी की भाषा में उसकी धार्मिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं को व्यक्त करने वाले जैन और बौद्ध सिद्धों की वाणी की झंकार सुनाई दे रही थी। सातवीं शताब्दी से दशवीं शताब्दी तक इन सिद्धों की वाणियों की परंपरा प्रायः समस्त उत्तरी भारत में अविच्छिन्न रूप से चलती रही जिसको कुछ सुधार के साथ गुरु गोरख नाथ के नाथ-सम्प्रदाय योग-साधन का बल देता रहा। "संसकिरत है कूप-जल भाषा बहता नीर" कह कर निर्मल लोक भाषा

के जल से सरस्वती का अभिषेक करने वाले क्रान्तिदर्शी कबीर की पैनी दृष्टि मध्ययुग की धार्मिक विभिन्नताओं और विषमताओं में अभिन्नता और अभेद, साम्य और समन्वय खोज रही थी। अतीत और वर्त्तमान को जोड़ने वाली सन्त परम्परा की मध्य कड़ी कबीर ही थे जो 'जोग जुगत सों रंग महल में पिय पायो अनमोल रे' कह कर 'आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी' की निरर्थकता बता रहे थे। उधर सूफी फकीर जायसी, कुतुबन और मंझन आदि भारतीय लोक-जीवन से द्रव्य संग्रह कर, पद्मावती, मृगावती, आदि प्रबन्ध काव्य की रचना कर लोक जीवन के माध्यम से अलौकिक जीवन से संबंध जोड़ने के लिए प्रेम-मार्ग पर अनावरत अग्रसर हो रहे थे। इतिहासकारों ने जायसी और उनके वर्ग के अन्य सूफी कवियों को प्रेममार्गी कवि कहा है और कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि को ज्ञान मार्गी कवि। शायद साम्प्रदायिक दृष्टि से यह विभाजन युक्ति संगत हो, किन्तु ये दोनों वर्ग नदी के उन दो किनारों के तरह नहीं है, जो एक दूसरे से कभी नहीं मिल पाते, वरन् इसकी स्थिति दोनों किनारों को छूकर बहने वाली अविच्छिन्न धारा की तरह है। एक वर्ग एक किनारे को छूकर बह रहा है, दूसरा वर्ग दूसरे किनारे को, किन्तु धारा तो एक ही है। इस लिए प्रेम मार्गी कवियों की रचनाओं में ज्ञान और योग का प्रकाश भरा हुआ है, और ज्ञान मार्गी कवियों में प्रेम और विरह की वेदना भरी हुई है और इस प्रकार प्रेम और ज्ञान की यह धारा लोक जीवन को परिप्लावित करती जा रही है। (बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन की भूमिका)

इसी योग धारा के संवाहक हैं—अनेकानेक ज्ञात-अज्ञात वंदनीय संतगण। प्रातः स्मरणीय गुरूनानक, संत रैदास, दादू साहब, भीखा साहब, स्वामी चरणदास हाथरस निवासी, तुलसी साहब, राधा स्वामी, बाबा देवी साहब और स्वामी मेंहीं दास की वाणी युग-युग से धर्म प्राण भारत भूमि को झंकृत करती चली आ रही है। इन संतों की अमृत वाणी हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि है जिससे सारा हिन्दी संसार गौरवान्वित है। हिन्दी साहित्य की रहस्यवादी काव्य धारा की प्रमुख संवाहिक, महादेवी अपने अरूप आराध्य के प्रति अपनी भावनाओं को समर्पित करती हुई गा उठती है— "क्या पूजन क्या अर्चन रे; उस असीमका सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।"

सत्पुरुषों-सज्जनपुरुषों-साधुसंतों के संग का नाम सत्संग है—(सत्संग योग की भूमिका पृष्ठ १)। मुक्तिकोपनिषद चित्त निरोध के लिए अन्य साधनों के साथ-साथ साधु संग अपरिहार्य घोषित करता है।

> अंकुशेन बिना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः।
> अध्यात्मविद्याधिगमः साधु संगति रेव च॥
> वासना संपरित्यागः प्राण स्पन्दनिरोधनम्।
> एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल॥

संत तुलसी दास जी ने स्पष्ट कहा है—

बिनुसत्संग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सत्संगति मुद मंगल मूला, सोई फल सिधि सब साधन फूला॥

कबीरदास जी सत्संग महिमा का बखान करते हुए

कहते हैं—

कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का वास ।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौभी बास सुबास ।।

सूरदास जी ने सत समागम को करोड़ों तीर्थों के पुण्य-फल के समान कहा है—

जा दिन सन्त पाहुने आवत ।
तीरथ कोटि अन्हान करे, फल दरसन पैही पावत ।।

सत्संग जीवन-मुक्ति-साध्य के लिए एक साधन है—

सत्सङ्गत्वे निस्सङ्गत्वं, निस्सङ्गत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चिलत्वं निश्चिलत्वे जीवन्मुक्तिः ।।

स्वामी श्री शुद्धानंद जी भारती कहते हैं कि संत ही मानव जाति के प्राण हैं, संत ही संसार-रूपी पादप के अमृत फल हैं, संत ही सभ्य समाज को प्रकाश देने वाले प्रदीप हैं। वही पाप-ताप से पीड़ित मानव जाति को ऊपर उठाने वाली शक्ति हैं। अतः सभी जातियों और सभी देशों के संतों को हम नत-मस्तक हो कर प्रणाम करते हैं।

पर संत कौन?

जो, निरबैरी, निःकाम (निष्काम), हरि प्रेमी (साईं सेती नेह) विषय हीन (विषिया सूंन्यारा रहे), उन्मन भाव में मस्त (तन छीण मन उन्मना जग रुठरा फिरंत), विरक्त (कामिणी अंग विरकत भया), संशय हीन और दूसरों के प्रति निःस्वार्थ आदर भाव रखने वाला हो—" 'कबीर'। पर इन सब में प्रधान लक्षण तो हरि-प्रेम ही है।

संतों के मत वा धर्म को संतमत कहते हैं। (सत्संग योग पृष्ठ ३३३)। संतमत की यह परिभाषा अत्यन्त ही सरल पर अर्थगर्भित है। यह मत अत्यन्त ही प्रभविष्णु और व्यापक धार्मिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन है जो जीवन की संपूर्णताको स्पर्श करता है। इसमें इसी जीवन में परमात्मा की प्राप्ति की आग्रह है। सच तो यह है कि मृत्युपरान्त परमात्मा की प्राप्ति संतों को श्रेयस्कर नहीं। जब इसी जीवन में 'प्रीतम' से साक्षात्कार हो सकता है तो अपर जीवन की प्रतीक्षा क्यों? हाँ उसके लिए अटूट विश्वास, अटल प्रेम, निरंतर साधना, हृदय मंथन और सतत प्रयास अनिवार्य है। माया मोह से विनिर्मुक्त जीव 'ब्रह्मरन्ध्र' में प्रवेश कर 'परम ब्रह्म' से मिलकर ब्रह्ममय हो जाता है। 'घूंघट के पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे'— कबीर। संत साहित्य में सगुण वैष्णव साहित्य की तरह सांसारिक विषयों के त्याग की महिमा है परंतु उनका संदेश वैराग्य नहीं। रति और विरति सापेक्ष भाव हैं। भगवान से 'रति' और संसार से 'विरक्ति'। सद्गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए आत्माभिमुख होना भी योग है—

अवधू भूले को घर लावै सो जन हम को भावै
घर में योग भोग घर ही में घर तजि बन नहिं जावै
बन के गये कल्पना उपजै तब धौं कहां समावै।
घर में जुक्ति मुक्ति घर ही में जो गुरु अलख लखावै— कबीर

संतमत में सदाचार का प्रबल आग्रह है। आचरण हीन साधना तो बालू की भित्ति है जिसके भवन आँधी के एक झोंके से भू-लुंठित हो जाता है। चरित्र की इसी शुद्धता और दृढ़ता के कारण कबीर ने ऊर्जस्वित स्वर में कहा था— 'सोइ चादर सुरनर मुनि ओढ़ै; ओढ़ी कै मैली किन्ह चदरिया। दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों

धर दीनी चदरिया'। भगवान बुद्धदेव ने जिस भूमि में सदाचार की महिमा प्रतिष्ठित की थी आज उसी भूमि में एक बार फिर सदाचार की महिमा समवेत स्वर में गूंज उठी। स्वामी जी ने "पंचशील" सिद्धान्त को साधना के लिए आधार भूत माना है। 'झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार का निषेध' और ईश्वर पर अटल भरोसा, हृदयान्तर में ईश्वर की प्राप्ति पर पूर्ण विश्वास, सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग एवं दृढ़ ध्यानाभ्यास का आग्रह है। इस 'पंचशील' सिद्धान्त से अभिप्रेरित होकर लाख-लाख व्यक्ति आज सत् मार्ग पर दृढ़ कदम रखते हुए अपने 'साध्य' की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

संतमत की वर्तमान धारा ने प्रांत की सीमा को पार कर सम्पूर्ण भारत को आप्लावित कर दिया है। आज इस आन्दोलन ने अखिल भारतीय रूप धारण कर लिया है और इसने सभी वर्गों के जीवन को स्पर्श कर उसे स्पृहणीय बना दिया है। धनी, गरीब शिक्षित, अशिक्षित वकील, डाक्टर, इंजिनियर तथा प्रोफेसर संतमत से ही योग-युक्ति पाकर जीवन के चरम परम लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस चतुर्दिक प्रगति का सारा श्रेय महान संत श्री स्वामी मेंहींदास जी महाराज को है। कई दशकों से महान संत अपने प्रातिभ ज्ञान, अनवरत साधना सद्ग्रन्थों की रचना और प्रकाशन द्वारा इस आन्दोलन का प्राण संचार करते रहे हैं और भिन्न-भिन्न अंचलों में संतमत सम्मेलन तथा सत्संग मन्दिरों के संस्थापना द्वारा इसका प्रचार प्रसार करते रहे हैं। संतमत के वर्तमान आन्दोलन युग के चरण की गति के साथ क्षिप्रता से जन-जीवन को आन्दोलित कर रहा है। हरिजनोद्धार तथा श्रम की प्रतिष्ठा आज युग-धर्म है, और 'पंचशिला' के आधारभूत सिद्धान्त मानव धर्म। संतमत के सत्प्रयास से हरिजनों एवं पिछड़ी जातियों में धार्मिक चेतना द्वारा नया प्राण फूंका जा रहा है। अनेक दशकों से भारत ने श्रम के गौरव को भुला दिया है। बाबा देवी साहब ने स्वामी मेंहींदास जी को स्वावलम्बी होने की शिक्षा दी थी। वे (बाबा साहब) चाहते थे कोई आदमी ऐसा न हो जो अपनी कमाई से नहीं खा सके '(श्री मेंहीं वचनामृत पृष्ठ २३७)।' आज के विग्रह-संकुल संसार में दृष्टिकोण का समन्वय अनिवार्य समझा जाता है। संतमत में भी इसी समन्वयका आग्रह है। किसी पंथ से इसे विरोध नहीं, किसी पंथ के प्रवर्त्तकों से अश्रद्धा नहीं, सन्तमत सागर में अनेकानेक सन्तवाणी की धाराओं का सम्मिलन है। आज जिस प्रकार नेहरू जी का पंचशिला का सिद्धान्त अविश्वास और निराशा के घने कुहरे को विदीर्ण कर संसार को विश्वास और आशा का प्रकाश दे रहा है, उसी प्रकार स्वामी जी का 'पंचशील' सिद्धान्त प्रीतम के पथ पर लक्ष-लक्ष जनों को प्रकाश दे रहा है।

सत्संगप्रेमियो !

आप सन्तों के शुभागमन से धरहरा की यह नगरी फिर एकबार तीर्थ स्थल हो रही है। यहां के धूलि-कण आप के चरणों को स्पर्श कर धन्य-धन्य हो रहा है। जिस भूमि में शताब्दियों तक 'बुद्धं शरणं गच्छामि' 'धर्मं शरणं गच्छामि' 'संघं शरणं गच्छामि' का स्वर संचार होता रहा, आज वही

भूमि 'प्रणव' और 'अनाहत नाद' से निनादित है। इस प्रान्तर के निवासी एक साथ इतने संतों का दर्शन कर अक्षय पुण्य-अर्जन कर रहे हैं। सन्त तुलसी दास जी ने ठीक ही कहा है 'साधु चरित शुभ सरिस कपासू, निरस विशद गुणमय फल जासू'। इसीलिए बाबा देवी साहब कहा करते थे कि 'जहां रहो सत्संग करो'। अनेक वर्षों के बाद हमें एक बार फिर यह स्वर्ण-अवसर प्राप्त हुआ है। अतः हम कृत-कृत्य हैं। पर भारत के विभिन्न प्रान्तर से शत-शत संत आ कर सम्मेलन में भाग ले रहे हैं, यहाँ तक आने में आप महानुभावों को बड़ी कठिनाइयाँ हुई होंगी। आपको यहां पहुंचकर भी बहुतेरे कष्ट उठाने पड़ेंगे, हमारी त्रुटियों के कारण। पर हमें विश्वास है कि जिस मन्तव्य को, जिस श्रद्धा को लेकर आप आये हैं, आप उन कष्टों का ख्याल न करेंगे और हमें क्षमा प्रदान करेंगे। आपका मन्तव्य सात्विक है, आपकी श्रद्धा अगाध तथा अटल है और यही हमलोगों का एकमात्र संबल है। मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ, हमारा अतिथि सत्कार भक्ति तथा प्रेम-पूर्ण है। संत तुलसी दास जी के स्वर में स्वर मिलाकर हम गा उठते हैं—

"विधि हरिहर कवि कोविद बानी,
कहत साधु महिमा सकुचानी।
सो मो सन कहि जात न कैसे,
शाक-वणिक मनि-गुण-गण जैसे॥"

ॐ शान्तिः! ॐ शान्तिः!! ॐ शान्तिः!!!

सिकलीगढ़, धरहरा विनयावनत—
मिति २५ नवम्बर १९५५ चन्द्रनारायण मल्लिक

—:o:—

पृष्ट ३ का शेषांश

दूत! आज आप के 'पंच शील' मार्ग पर आरूढ़ होकर लक्ष-लक्ष जन अपने 'प्रीतम' से मिलने चले जा रहे हैं।

धरहरा के विराट–गौरव!

प्रेम पागल होता है, और उसकी धारा वर्षा नदी के वेग की तरह उचित-अनुचित, शान्त और असीम के कगारों को तोड़ती, उछलती, कूदती अनन्त सागर में मिलने को दौड़ जाती है। आज हमारी प्रेम-धारा में वही प्रमत्त प्रवेग है। पर ये प्रेम-वाणी अतिरंजित नहीं, दंभोक्ति नहीं, बाह्य-प्रदर्शन नहीं, वरन् धरहरा के प्रत्येक जन के अन्तस निसृत निर्मल निर्झरणी है, उनके निश्छल हृदय की भक्ति-गंगा है। धरहरा के अधिवासियों के लिए यह मणि-कांचनयोग है। आप संत के निर्मल व्यक्तित्व के पारस को स्पर्श कर यहां के जन-जन, मन-मन, तन-तन, कण-कण, स्वर्ण बन रहे हैं। अतः आपके चरणों पर पुनीत भावना के निर्माल्य को अर्पित कर रहे हैं। आशा है, आप उदारमना 'अपना' जानकर हमारे प्रेम-अर्घ्य को स्वीकार करेंगे।

हम हैं,

धरहरा (पूर्णियाँ) आप के चरण-रेणु
२५-११-१९५५ सिकलीगढ़ धरहरा के ग्रामीण-जन।

प्रवचन-१

स्वामी मेँहीदास जी महाराज

(स्थान सिकलीगढ़, धरहरा, ता० २५—११—५५ प्रातःकाल)

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

यह सत्संग हमलोगों को बहुत ऊँचे जाने को सिखलाता है। इतना ऊँचा जिससे विशेष कोई ऊँचाई नहीं हो सकती। ऊँचाई की शिखर पर पहुंचाने को सत्संग सिखाता है। सन्तों के संग को सत्संग कहते हैं।

"सत संगति दुर्लभ संसारा।
निमिष दंड भरि एकउ बार।।"

गोस्वामी तुलसी दास जी ने ठीक ही कहा है। प्रत्यक्ष में सन्तों का संग वास्तव में बड़ा दुर्लभ है। सन्तों को पहचानने की योग्यता मुझमें नहीं है। बड़े बड़े साधकों तथा सन्त-लोगों ने सन्तों का गुण जैसा वर्णन किया है, मैं उन्हें पहचानने योग्य बनूँ, यह बहुत दुर्लभ है।

"अमित बोध अनीह मित भोगी।
सत्य सार कवि कोविद जोगी।।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते।
कहि न सकहि सारद श्रुति तेते।।
विधि हरिहर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी।।
सो मो सन कहि जात न कैसे।
साक बनिक मनि गन गुन जैसे।।"

—गो० तुलसी दास जी

तुलसी साहब भी सन्त कहलाते हैं। वे बहुत अच्छे थे, लोग कहते हैं। उत्तर प्रान्त के लोग उनको जानते हैं। इधर के लोग उन्हें विशेष नहीं जानते। उन्होंने कहा है—

"जो कोई कहै साध को चीन्हा।
तुलसी हाथ कान पर दीन्हा।।"

गीता में श्री कृष्ण से अर्जुन ने स्थितप्रज्ञ अर्थात् सन्त का लक्षण पूछा कि वे कैसे बोलते, चलते, बैठते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देकर भगवान् ने केवल उनका, स्थित-प्रज्ञों (सन्तों) का गुण ही गाया है। सन्त को ही मैं स्थितप्रज्ञ कहता हूँ। सन्तों के गुण का वर्णन है किन्तु उनको ठीक-ठीक पहचानना अति कठिन है। जो

संत हों, वे ही संत को पहचान सकते हैं, जैसे जौहरी हीरा को पहचानते हैं।—

'हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध।
जो कोई परखे साध को, ताका मता अगाध ॥

—कबीर साहब

हमलोगों के सामने पहले अमुक संत थे और अब हमलोगों के सामने अमुक संत हैं; इस तरह परीक्षित भाव से संतों की पहचान, उनका संग अर्थात् सत्संग कैसे हो? गुरु महाराज ने कहा था—'बेटा! चिट्ठी आधी मुलाकात होती है। संतों की वाणी जो उनके ग्रन्थों में है, उसको पढ़ो। यह सन्तों की वाणी संतों की आधी मुलाकात है।" यह ही क्या कम है, बहुत है। लोग नये ग्रन्थों का प्रकाशन करते हैं। मैं कहता हूँ जिन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है, उन्हें समझना चाहिये तथा उनके अनुकूल कर्म निरत होना चाहिये। इसीलिये सन्तों की वाणी का पाठ हमारे सत्संग में होता है। सन्तों की वाणी को हम समझेंगे उसके अनुकूल चलेंगे। सन्तों की वाणी में है:—

"जीवन से मरना भला, जो मरि जाने कोय।
मरने पहले जो मरे, तो अजर अरु अम्मर होय ॥
मरते मरते जगमुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥"

(कबीर साहब)

"नानक जीवत या मरि रहीअै ऐसा जोगु कमाइअै।
बाजे बाजै सिंजी बाजै तउ निरभउ पदु पाइअै ॥"

(गुरु नानक)

आप कहेंगे जीते जी मर जाना तो शाप है, संत लोग भले ऐसा कहते हैं, परन्तु हमलोगों के लिये यह उत्तम बात नहीं है। कबीर साहब ने कहा है:—

"जो मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ॥"

छान्दोग्योपनिषद् में है कि ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर मरो तो कोई कष्ट नहीं होता है। मरने समय बहुत कष्ट होता है। किसी मरने वाले के निकट जाकर उन्हें देखिये कि उनका चेहरा कैसा कैसा होता है। उन्हें कष्ट हो रहा है, उनके चेहरे से ऐसा विदित होगा। जन्म होता है तो मृत्यु अवश्य होगी।

"अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरति क्रम भारी ॥"

शरीर बहुत दिनों तक रहने पर भी कभी अवश्य नाश होगा। ऐसी मौत से मरो कि फिर जन्म न हो। असली मरना यही है। यह शाप नहीं है। यह बहुत कुशल की बात है कि ऐसा मरो कि फिर नहीं मरोगे, पुनः दुख में नहीं आओगे। किन्तु ऐसा मरन अपने जीवन में ही हो जाय।

पंजाब के स्वामी रामतीर्थ ने कुछ दिन विद्याध्ययन किया, उसके साथ ही उन्होंने योगसाधन भी किया। उनके गुरु बड़े अच्छे थे। कुछ दिनों तक वे प्रोफेसर थे, फिर घर छोड़कर सन्यासी हो गये। वे जापान गये वहाँ उन्होंने व्याख्यान दिया। वे अपने को राम बादशाह कहा करते थे और पास में एक पैसा भी नहीं रखते थे। वे जापान से अमेरिका गये। जापानी ने अमेरिका तक के जहाज का भाड़ा दे दिया था। अमेरिका पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने पूछा कि तुम कितने रुपये साथ लाये हो जो यहाँ उतरोगे।

उन्होंने कहा—मेरे पास रुपये नहीं। अमेरिकन ने कहा—तब तुम यहाँ उतर नहीं सकते। उन्होंने कहा- अवश्य उतरूंगा। अमेरिकन ने पूछा तुम कौन हो ? उन्होंने कहा- मैं रामबादशाह हूँ, पुनः अमेरिकन ने पूछा-कौन राम बादशाह, जिन्होंने भारत से जापान पहुँचकर व्याख्यान दिया है ? उन्होंने कहा- हाँ, वही राम बादशाह। वहां के एक और अमेरिकन सज्जन ने कहा कि इन्हें जहाज से उतरने दो। ये जब तक अमेरिका में रहेंगे तब तक मैं इनका सब खर्च अपने ऊपर लेता हूँ। रामबादशाह हँसे और बोल उठे- खजाना तो बादशाह के खजाञ्ची के पास में रहता है, खुद बादशाह के पास नहीं। उन सज्जन की ओर बताकर उन्होंने कहा- देखो ये मेरे खजाञ्ची हैं। वहां के लोगों ने कहा कि आप विज्ञापन छपवा कर वितरण कराइये कि लोग आकर आपका व्याख्यान सुनें। राम बादशाह ने कहा कि मैं इस तरह विज्ञापन वितरण नहीं करता हूँ। शहर के अच्छे-अच्छे डाक्टर मेरे पास आवें। सिवाय उनके और दूसरे कोई न आवें। वे ही डाक्टर मेरे विज्ञापन होंगे। ऐसा ही हुआ। डाक्टरों से उन्होंने अपने शरीर की जांच करवाई। डाक्टरों ने अपनी जांच में उनके शरीर को बिल्कुल मृतक पाया। दिल का धड़कन और नाड़ियों के स्पन्दन सभी बन्द थे। फिर वह जिन्दा कैसे हैं, यह देखकर डाक्टर घबड़ाये। राम बादशाह ने कहा कि शरीर सब दिन मृतक है। मैं जिन्दा था, अभी जिन्दा हूँ और जिन्दा रहूँगा। यही भारतीय योग-विद्या है।

जीते जी मर जायँ, यह बड़ी खुशी की बात है। शरीर मर है और जीवात्मा अमर है, यह कभी नहीं मरता। जीवन काल में शरीर से संग छूट गया, फिर मरने पर संग नहीं हो सकता। जिसके जीवन में शरीर संग है उसके मरने पर शरीर नहीं छूट सकता। इस शरीर से कैसे छूटा जाय यही हमलोग जानना, जनाना, करना और कराना चाहते हैं। इसलिए पहले शरीर को स्थिर रखो, एक आसन से देर तक बैठो।

"आसन दृढ़ आहार दृढ़,
भजन मेल दृढ़ होय।
तो प्राणी पावे कछुक,
नहिं तो रहै विषय रस मोय ॥"

भोजन की मात्रा जानो। कितना खाना चाहिए, कब खाना चाहिए इसको जानो। गीता कहती है, —न पूरा भरकर खाव, न बिल्कुल उपवासी रहो, स्वल्प भोगी बनो और तब भजन करो।

बचपन में पढ़ने में मन नहीं लगता था। हमारे पिता हमारे अभिभावक ने हमको स्कूल भेजा। इस तरह विद्या पढ़ा। महर्षि शिवव्रत लाल महोदय जी ने कहा है कि सत्संग में एक आसन से बैठो, यह आसन का साधन है। ध्यान देकर सुनोगे तो क्या सत्संग हुआ, यह समझ सकोगे। इस तरह मन को एक ओर लगाने का भी साधन होगा। मुरादाबाद में उन महर्षि जी का मुझे पहला दर्शन हुआ था। यहाँ (धरहरा) वे विना बुलाये हुए ही आये थे, वे सरल हृदय के थे।

उपर्युक्त प्रकार के फल लाभ का भजन-साधन आरम्भ में एकान्त बैठ-बैठ कर करना चाहिये। रामकृष्ण परम हंस देव जी का वचन है—'पहले कुछ दिन तक एकान्त में बैठकर ध्यान करना सीखो।

पूरा अभ्यास हो जाने पर फिर जहाँ-तहाँ बैठकर भी ध्यान कर सकोगे। पेड़ जब छोटा रहता है तब उसको घेरा लगाकर रखना पड़ता है, नहीं तो गाय, बकरियाँ चर जायँ। जब वह पेड़ पूरा बढ़ जाता है तब फिर उसमें दस-दस गाय-बकरियाँ बंधी रहने से भी उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता। गुरु नानक देव जी ने कहा है—

''रहहि एकान्ति एको मनि बसिआ आसा माहि निरासो ।
अगमु अगोचरु देखि दिखाए नानक ताका दासो ॥''

आज कल के कतिपय विद्वान साधनारम्भ में ही कहा करते हैं कि—

''आँखि न मूँदों कान न रूधौं तनिक कष्ट नहीं धारौं।
खुले नयन पहचानौं हँसि हँसि सुन्दर रुप निहारौं ॥''
(कबीर साहब)

उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार सहज समाधि की स्थिति तो साधन समाप्त हो जाने पर प्राप्त होती है। साधन के आरम्भ में तो ''बन्द कर दृष्टि को फेरि अन्दर करै, घट का कपाट गुरुदेव खोलै'' और—

''आँख कान मुख बन्द कराओ,
अनहद झींगा शब्द सुनाओं।
दोनों तिल एक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है ॥''
(कबीर साहब)

''धुन आनै जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव ।
सो मेरा गुरुदेव सेवा में करिहौं वाकी ।
शब्द में है गलतान अवस्था ऐसो जाकी ॥
निस दिन नसा अरूढ़ लगै न भूख पियासा।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा ॥
तुरिया सेती अतीव सोधि फिर सहज समाधी ।
भजन तैल की धार साधना निर्मल साधी ।
पलटू तन मन वारिये मिलै जो ऐसा कोउ ॥
धुन आनै जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव ॥''
(पलटू साहब)

हमको इन सन्तोक्ति आरम्भिक साधनाओं का पहले अभ्यास करना चाहिए।

अब मैं आता हूँ जो शब्द अभी गाये गये।

मेरी सुरत सोहागिनी जाग री ।
क्या तुम सोवत मोह नींद में,
उठि कै भजनियाँ में लाग री ।
चित से शब्द सुनो सरवन दे,
उठत मधुर धुन राग री ॥
दोउ कर जोड़ि सीस चरणन दे,
भक्ति अचल बर मांग री ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो,
जगत पीठ दै भाग री ॥

सुहागिनी स्त्री वह है, जो पति से प्यार की जाय। जो पति से प्यार नहीं की जाय, वह दुहागिनी है। जीवात्मा, सुरत को कहते हैं।

''आदि सुरत सत पुरुषते आई ।
जीव सोई बोलिये सो ताई ॥

सुरत का अर्थ ख्याल भी होता है। जीवात्मा के लिए 'सुरत' शब्द का प्रयोग सन्तवाणी में बहुत किया गया है। जिसका पति जीवित हो और जो पति से प्यार की जाती हो, वह सुहागिनी है। चेतन आत्मा को स्त्री कहा गया है, इसका पति परमात्मा है। चेतन आत्मा को जिधर नहीं जाना चाहिए, उधर भी जाती है। इस लिए जगने कहते हैं। भजन में लगने से जगना होगा। मोह-लोभ में जगना, जगना नहीं

है, सोना है। असार तत्व के त्याग का और सार तत्व के ग्रहण का सुरत या जीव को ज्ञान होना चाहिए। तब वह उठा और जगा। यह त्याग और ग्रहण केवल विचार से नहीं होगा। स्वप्न में केवल विचार हो कि जग जायँ-जग जायँ, तो केवल कहने से जगते हो या कोई स्वाभाविक क्रिया होती है? जाग्रत से स्वप्न में जाने के लिए बाहर के खयाल छूटते हैं। स्वप्न में इसका खयाल मन में होता है तो विविध स्वप्न देखते हैं। जगने और सपने में अन्तर्मुखी होना और बाहर होना स्वाभाविक है। जगने के स्थान से दूसरे स्थान में जाने से दूसरी अवस्था हो जाती है। लोभ मोह में हम नहीं रहें, सार को पकड़ें ऐसा ज्ञान होने पर भी भूल-भटक जाते हैं। ऐसा क्यों? इसलिए कि जगने के स्थान में नहीं हैं। हमलोग इस शरीर में कहां हैं? आंख में हैं। आँख बन्द कर पूछिये-मैं कहां हूँ? तो उत्तर होगा कि अंधकार में। अन्धकार कहां है? नयनाकाश में। नयनाकाश में अन्धकार है और अन्धकार में मैं हूँ। इसलिए मैं आँख में हूँ।

"जानिले जानिले सत्त पहचानि ले,
सुरत सांची बसै दीद दाना"।
(दरिया साहब, बिहारी)

'नेत्रस्थं जागरितं स्वप्नं कण्ठं समाविशेत्...।' ब्रह्मोपनिषद्।

जाग्रत से स्वप्न में जाने पर स्थान छूट जाता है उस समय आप कण्ठ में चले जाते हैं। स्वर का स्थान कण्ठ है, इसलिये स्वप्न में भी कभी-कभी बोल उठते हैं। कण्ठ को षोडस दल कमल भी कहते हैं। जब तक यहां रहेंगे तब तक आप स्वप्न में रहेंगे। गहरी नींद में फेफड़ा में रहेंगे। वह स्वर का स्थान नहीं है, इसलिये हम बोल नहीं सकते। हम साधारणतः जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति; इन तीनों अवस्थाओं में जाते आते रहते हैं। स्वप्न से जागते हैं, किन्तु इस जगने को जगना नहीं कहते हैं। मुद्रा में स्थिति रखने से जगना होगा। दरिया साहब (मारवाड़ी) कहते हैं—

"माया मुख जागे सभे, सो सूता कर जान।
दरिया जागे ब्रह्म दिसि, सो जागा परमान॥"

हमलोग मोह में सोये हुए हैं, इससे कैसे जगा जायगा। तो कहा—'चित्त से शब्द सुनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री'। आपके अन्दर राग होता है—'यहि घट बाजै तबल निशान। बहिरा शब्द सुने नहिं कान॥' ध्वनि को सुनने के लिये तुम वहां ठहरो जहाँ पर जाकर तुम सुन सकते हो। कहाँ पर जाकर कोई सुन सकते हैं? इसके लिए पहले वैष्णवी मुद्रा वा शाम्भवी मुद्रा यानी दृष्टि योग करने के लिये नादबिन्दूपनिषद् में कहा है और सन्तों की वाणी में भी इसकी विधि बतलाई गई है। दृष्टि योग करने से ही आप वहां पहुँचकर सुन सकते हैं जहाँ पहुँचकर सन्त वाणी के अनुकूल आन्तरिक नाद सुना जा सकता है। कितने कहते हैं कि बिना दृष्टियोग के किये ही तो सुनते हैं तो उनको जानना चाहिये कि वे उस शब्द को नहीं सुन सकते, जो सुनना चाहिये। यदि बिना दृष्टियोग के ही शब्द का सुनना होता तो सन्त लोग दृष्टि साधन करने पर विशेष जोर नहीं देते। इसकी शिक्षा कहाँ होगी? जहाँ होगी वहाँ जाइये अर्थात् सन्तों के पास जाइये। यह

क्रिया किजीये तब संसार की ओर पीठ होगा। अभी संसार में कहीं भी जाओ सन्मुख संसार रहेगा। मुर्दा में जाने से संसार की ओर पीठ देना होगा। गो० तुलसी दास जी के शब्द में सुनाया गया है—

"जागु जागु जागु जीव जो हैं जग जामिनी।
देह गेह नेह जान जैसे घन दामिनी॥"

इन्होंने भी एक दूसरे पद्य में चौथा अवस्था में जाने के लिये कहा है: –

"तीन अवस्था तजहुँ भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर व्यापक व्याप्य अनन्त॥"

अर्थात् तीनों अवस्थाओं को छोड़कर भजन करने कहते हैं। तीन अवस्थाओं को छोड़ना योगियों से ही हो सकता है। इसलिये तुलसी-कृत रामायण में है कि:—

"एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।"

इसी तरह सभी सन्त कहते हैं। उपनिषदों में भी है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत…' अर्थात् अरे अविद्या ग्रस्त लोगों! उठो!! अज्ञान निद्रा से जागो "। बाहर में कहीं भी जाने से संसार से और तीनों अवस्थाओं से नहीं छूट सकते। जो अपने को तुरीय अवस्था में ले जाते हैं तो वे मरकर फिर नहीं मरते। रोग व्याधि से मर जाने पर फिर-फिर मरना होगा। कुछ कोशिश करके मरने से यह संस्कार आगे जन्म में प्रेरणा करेगा और यही संस्कार जमा होते-होते एक दिन ऐसा बना देगा कि संसार में आना नहीं होगा। इसी के लिये यह सत्संग है। इसमें कोई बाह्याडम्बर नहीं है।

हमलोग यहाँ सत्संग करने और सत्संग का प्रचार भी करने के लिये आये हैं।

पृष्ट १९ का शेषांश

वह ससीम हो जायगा। सब ससीमों में वह पूर्ण है और सबसे बाहर भी है *।

जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रुप के अनुरुप हो रहा है और उनसे बाहर भी है। कितना बाहर जिसका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। वह एक अनादि अनन्त तत्त्व अवश्य है, इसीं का प्रचार सभी सन्त किये। और इस सत्सङ्ग से भी इसी का प्रचार होता है। यही प्राप्तव्य है, यही ईश्वर है।

* "वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव। एक स्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥"
(कठोपनिषद् अध्याय २ बल्ली २)

[stamp]

प्रवचन-२

स्वामी मेंहीदास जी महाराज
(स्थान सिकलीगढ़, धरहरा, ता: २५-११-५५ अपराह्न)

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

आप सोचिये कि आपको क्या चाहिये ? किसी का हृदय ऐसा नहीं है कि जिसका हृदय कह दे कि दुःख चाहता हूँ। यदि किसी को आप देखते हैं कि दुःख उठाने के लिये अमुक व्यक्ति तत्पर है तो आप समझिये कि वह सुख पाने के लिये दुःख उठाता है। सभी सुख लाभ के लिये ही काम करते हैं।

स्कूल छोड़ने के कई वर्ष पहले मेरे मन में उत्पन्न होता था कि मैं अपने को किस तरह सुखी बना सकूँगा तो समझ में आया कि ईश्वर भक्ति में सुख होगा । रामायण पाठ करने की अभिरुचि मेरे बचपन काल से थी। मैं रामायण पढ़ा करता था। उसमें ईश्वर भक्ति के लिये बहुत प्रेरणा है।

"देह धरे कर यहि फल भाई।
भजिय राम सब काम बिहाई ॥"

और— "राकापति षोड़स उअहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये,
बिनु रवि राति न जाय ॥
ऐसहि बिनु हरि भजन खगेसा।
मिटहि न जीवन केर कलेसा ॥"

अर्थात्- ईश्वर भक्ति रूपी सूर्य का उदय हो तो दुःख रूपी रात नाश हो जायगी।

मैं पहले सोचा करता था कि क्या मुझसे परमात्मभक्ति सध सकेगी? तो कभी पैर ढीला होता था और कभी बल मिलता था। मेरे कई गुरु हुए। मैं जिज्ञासु होकर कइयों के यहाँ गया। सबसे ईश्वर भक्ति की प्रेरणा मिली। कहीं बाहर की भक्ति और कहीं भीतर की भक्ति करने का उपदेश मिला। अन्त में यह ज्ञान पाया कि बहिर्मुख और अन्तर्मुख दोनों प्रकार की भक्तियों का करना आवश्यक है।

प्राप्तव्य क्या है इसको जानो, फिर उसको पाने के लिये दौड़ो। बिना प्राप्तव्य जाने उसको पाने के लिये दौड़ना बुद्धिमानी नहीं है। ईश्वर क्या तत्त्व है, इसको जानो। मैं पहले जानता था कि राम ईश्वर है, शिव ईश्वर हैं। रामायण पढ़ने से राम और शिव दोनों को ईश्वर जानते थे। घर में भगवती की पूजा होती थी तो उनको भी देवी मानता था। फिर गाणपत्य और सौर भक्त को भी जाना। फिर समझा कि नरसिंह रूप, क्षीर समुद्र वासी, साकेतवासी, दशावतारी, सभी रूप उन्हीं ईश्वर के हैं; ऐसा सुना और कहीं कहीं ऐसा पढ़ा भी। गणेश, शिव, सूर्य विष्णु दुर्गादि देवियां तथा सम्पूर्ण चराचर एक ईश्वर के ही रूप हैं; ऐसा भी पढ़ा

और सुना है। ईश्वर सम्बन्धी इस ज्ञान पर सहज ही प्रश्न होता है कि ये सभी रूप जिनके, वे स्वयं अपने कैसे? उनका स्वरूप कैसा है? वह एक अनेक रूपों में है, वह कैसा? वह कितना बड़ा है अथवा कितना छोटा है, इसको जानने के लिये उत्सुकता आती है। होते-होते ऐसे लोगों से भी भेंट हुई जिन्होंने कहा कि किस ख्याल में तुम हो, जिसको लोग ईश्वर कहते हैं, वह हई नहीं है। किन्तु इस बात का विश्वास मुझे कभी नहीं हुआ। ईश्वर की स्थिति पर आक्षेपात्मक कितने ही प्रश्न उनके हुआ करते थे जिनका उत्तर देना कठिन होता था। किन्तु वे मेरे विश्वास को डिगा नहीं सके। कैवल्य शास्त्र नाम की एक पुस्तक मैंने पढ़ी, जिसमें है कि एक आदितत्त्व ऐसा है जो अनादि अनन्त है। गो॰ तुलसी दास जी की रामायण की चौपाई याद आती है:—

"व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥"

एक अनादि अनन्त तत्व अवश्य है। यदि इसमें कोई शक करे तो इसका जवाब है कि यदि सभी सान्त ही सान्त हैं और एक अनादि अनन्त तत्त्व नहीं है तो सभी सान्तों के मिलाने से अनन्त नहीं हो सकता। क्योंकि सान्त सान्त का जोड़ सान्त ही होगा, वह अनन्त नहीं होगा। तब प्रश्न होगा कि उस सान्त तत्त्व के पार में क्या है? इसका उत्तर होगा अनन्त है इसके सिवाय और कुछ उत्तर नहीं हो सकता।

इस संसार को देखकर लोग भले कहें कि संसार बनता है बिगड़ता है, इसके अंग-प्रत्यंग बनते और नाश होते हैं; यह अनन्त नहीं हो सकता। परन्तु यदि कोई उस अनादि अनन्त तत्त्व को प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है, इसलिये उसकी स्थिति को स्वीकार नहीं करे; यह ठीक नहीं। सारे सान्तों के पार में एक अनन्त अवश्य है।

"राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि परे।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥"
(रामचरित मानस)

"अप अखण्डित व्यापी चैतन्यश्चैतन्य।
ऊँचे नीचे आगे पीछे दाहिन बायँ अनन्य॥"
बड़ा ते बड़ा छोट ते छोटा मींहीं ते सब लेखा।
सबके मध्य निरन्तर साईं दृष्टि दृष्टि सों देखा॥"
(कबीर साहब)

बड़ा से बड़ा क्या हो सकता है? जिससे बड़ा और कुछ नहीं हो सके, वह अनन्त के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। एक अनन्त तत्त्व की स्थिति अवश्य है, यह बात बुद्धि के ग्रहण में आती है।

"अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिसु भाव न भरमा॥
साचे सचियार विटहु कुरबाणु ना तिसु रूप वरणु।
नहि रेखिया साचे सबदि नीसाणु॥"
(गुरू नानक देव)

कबीर साहब, गुरू नानक साहब और गोस्वामी तुलसी दास जी; इन तीनों सन्तों को इधर के लोग विशेष जानते हैं। ये तीनों सन्त कहते हैं एक अनादि अनन्त तत्त्व अवश्य है। परन्तु वह व्यक्त शरीर धारी लम्बे चौड़े आकार का नहीं है। किसी आकार-प्रकार का कहने से

(शेषांश पृष्ठ १७ पर)

प्रवचन-३

स्वामी मेँहीँ दास जी महाराज

(स्थान- सिकलीगढ़, धरहरा, ता० २६-११-५५ प्रातःकाल)

मैं चाहता हूँ कि ईश्वर-स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय सन्तों की वाणी के अनुसार हो जाय। फिर आप के बोध में आवे कि उसकी भक्ति कैसे की जाय ? जब तक स्वरूप समझ में नहीं आवे, तब तक उसकी भक्ति कैसे की जाय, बोध में नहीं आता। फिर उसके लिए संयम करना चाहिये जिससे उस भक्ति-मार्ग पर ठीक-ठीक चला जाय। इन्हीं सब आवश्यक बातों को बोध करने और कराने के लिये सत्संग है। आपको रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का प्रत्यक्ष ज्ञान है। इन बाहर के पदार्थों के अतिरिक्त और कोई कुछ प्रत्यक्ष रूप में जानते हैं, ऐसा नहीं। लोग इन्हीं को जानते हैं और इन्हें जानने के लिये सबको पंचज्ञानेन्द्रियाँ है। आँख से रूप, कान से शब्द, जिभ्या से रस, नासिका से गंध और त्वचा से स्पर्श जानते हैं। ये सब कैसे हैं, सो सोचिये। जो कुछ भी आप देखते हैं, सभी एक तरह रह जाय, हो नहीं सकता। रूप एक तरह रहै, शब्द एक तरह रहे, हो नहीं सकता। शब्द के लिये लोग कहते हैं कि यह अनाश है। सुनने के समय शब्द सुनते हैं, उसके बाद उस शब्द को नहीं सुन सकते। लोग विचार में ही जानते कि पहले के भी शब्द आकाश के गर्भ में हैं। परन्तु इसका प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं है। जब इसको प्रत्यक्ष कर ले तब उसको नित्य समझेंगे। प्रत्यक्ष नहीं रहने पर भी विचार में ऐसा ज्ञान है तो यह आज के ख्याल में अयोग्य नहीं है। शब्द ऐसा नहीं है कि वह पानी में सड़ जाय या आग में जल जाय। जब आप कहते हैं कि शब्द आकाश का गुण है। तो जहाँ गुणी है वहाँ गुण रहे यह असम्भव नहीं है। आप स्थूल इन्द्रियों के द्वारा स्थूल यंत्रों से स्थूल आकाश के शब्द सुनते हैं। जल, बर्फ और वाष्प स्थूल है। बर्फ कठिन होने से कठिन, उसका जल होने से तरल और फिर वाष्प होने से वाष्प रूप होता है। किन्तु फिर भी स्थूल है। क्योंकि स्थूल इन्द्रियों से इसका ज्ञान होता है। सृष्टि का विकाश एक ही बार में ऐसा हो गया, सो नहीं। इसका पूर्व रूप सूक्ष्म था और है। उसके बाद स्थूल है। पहले सूक्ष्म मंडल है जिससे स्थूल मण्डल बना। इस तरह जो बना सो कभी न कभी बिगड़ेगा यह असम्भव बात नहीं। ऐसी चीज को देखते हैं जो थोड़े समय में बदल जाती है। कोई ऐसी चीज भी है जो जल्दी नहीं बिगड़ती। तो इसके लिये भी आप बिचारते

हैं कि यह कभी न कभी बदल जायगा। स्थूलाकाश का विकाश सूक्ष्माकाश से हुआ है। यह स्थूलाकाश बदल कर सूक्ष्माकाश में रहेगा और यह भी नहीं रहेगा। सांख्य ज्ञान और सन्तों के विचार के अनुकूल जानने में आता है कि सृष्टि बनने के लिये एक महान तत्त्व है जिसको प्रकृति कहते हैं। सृष्टि में उपज, ठहराव और विनाश है। जिसके परिवर्त्तित-विकृत स्थूल में इन तीनों के काम होते देख जाते हैं, उसके मूल में ये तीनों नहीं हों, सम्भव नहीं। उत्पन्न करने की शक्ति को रजोगुण, पालन करने की शक्ति को सतोगुण और विनाश करने की शक्ति को तमोगुण कहते हैं। ये तीनों गुण सृष्टि के मूल मशाले-प्रकृति में ही हैं। अथवा यों भी कह सकते है कि ये तीनों गुण ही साम्य रूप में प्रकृति कहलाते हैं। अथवा यों भी कह सकते है कि त्रैगुण के सम्मिश्रण रूप को साम्यावस्थाधारिणी मूल प्रकृति कहते हैं। किसी गुण का उत्कर्ष और किसी का अपकर्ष होता है तब सृष्टि होती है। उस प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से सेन्द्रिय और निरेन्द्रिय दो प्रकार की सृष्टि हुई है। सेन्द्रिय में पहले मन बना और निरेन्द्रिय में पहले आकाश बना है। अब जानिये कि आकाश कितना नीचे है। पहले विचार द्वारा किसी वस्तु का सिद्धान्त स्थिर होता है फिर प्रयोग द्वारा उसको प्रत्यक्ष किया जाता है। बिना दार्शनिक विचार के बोध नहीं हो सकता कि जिस स्थूलाकाश में हम हैं, यह आकाश का अपर रूप है, पूर्व रूप नहीं है। यह स्थूलाकाश सूक्ष्माकाश में लय हो जायगा। इस प्रकार जब स्थूलाकाश का नाश होगा तब उसका शब्द भी नहीं रहेगा। इसलिये इस स्थूलाकाश का शब्द सत्य नहीं हो सकता। मुँह से शब्द निकलता है, वचनवर्द्धक यंत्र उस शब्द को दूर तक फैला देता है। यंत्र नहीं रहे तो दूर-दूर तक उस शब्द को नहीं सुन पाते। इसलिये शब्द नहीं है, यह कोई बात नहीं। इस तरह वह कायल कर देते हैं कि तब शब्द नित्य कैसे नहीं हो सकता? मैं कहता हूँ जिस स्थूलाकाश का गुण शब्द है, उस स्थूलाकाश के लय होने पर स्थूल शब्द कैसे रह सकता है? इसलिये यह शब्द नाशवान् है। विनाश दो प्रकार के हैं। एक केवल बदल जाय परन्तु अत्यन्ताभाव नहीं हो। जैसे आपका शरीर बदलता है। बचपन से अभी तक है, बदला है किन्तु अत्यन्ताभाव इसका नहीं हुआ है। शरीर के मरने और जलाये जाने पर भी इसका अत्यन्ताभाव नहीं होता; किसी न किसी रुप में इसके भौतिक तत्व रहते ही हैं। इसलिये उसका रहना हुआ। बदलते रहने के कारण असत् कहा गया। जैसे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी ने कहा है कि—"कोई झूठ बोलता है, दूसरा कहता है कि वह झूठा है; इसका अर्थ यह नहीं कि वह आदमी है ही नहीं। है, किन्तु वह अपना वचन बदलता रहता है इसलिये वह झूठा है"। समर्थ रामदास के दासबोध नाम्नी पुस्तक में है कि सौ वर्ष केवल धूप ही धूप होगा। यह भूमण्डल जलकर चूना हो जायगा। सौ वर्ष तक मूसलाधार जल की वर्षा होगी। जैसे इन्द्र ने ब्रज पर

जल वर्षा की थी, उससे भी विशेष मूसलाधार वर्षा होगी। इस प्रकार वह चूना गलकर पानी हो जायगा। तब सौ वर्ष तक केवल प्रचण्ड पवन चलेगा, तब सब पानी कण-कण होकर पवन स्थिर अग्नि में लय हो जायगा। अग्नि हवा में लय हो जायगी, हवा आकाश में लय हो जायगी, आकाश अहंकार में, अहंकार महतत्त्व अर्थात् बुद्धि में, बुद्धि प्रकृति में लय हो जायगी और प्रकृति ईश्वर में लय हो जायगी।

क्या अन्तिम के लय-स्थान के अतिरिक्त और पदार्थों को आप ईश्वर मानते हैं? ये सभी नाशवान पदार्थ हैं। परमात्मा भी यदि नाशवान हो तो उसकी भक्ति करके क्या लाभ? सभी धर्म के लोग परमात्मा को अनाश मानते हैं। गुरु नानक का वचन है:—

"अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।" जो काल की मर्यादा के बाहर है, उसका नाश कैसे हो सकता है?

केनोपनिषद् में है कि:—

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदि दमुपासते ॥५॥"

अर्थात्—जो मनसे मनन नहीं किया जाता, बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है; उसी को तू ब्रह्म जान। जिस इस(देशकालावच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करता है, वह, ब्रह्म नहीं है।

यहाँ 'इस' शब्द बहुत महत्त्व का है। 'इस' नजदीक की चीज को कहते है। और 'उस' दूर की चीज को कहते हैं। इस इन्द्रियगोचर पदार्थ को कहा गया है। जहाँ आप सशरीर हों वहाँ इन्द्रियगोचर पदार्थ नहीं हो कैसे संभव है? इन्द्रियगोचर पदार्थ परमात्मा नहीं हो सकता। इन्द्रियों के ज्ञान में वह आ नहीं सकता।

श्वेतकेतु एक मुनिपुत्र था। उन्होंने अपने पिता से ब्रह्म स्वरूप की जिज्ञासा की। मुनि ने श्वेत केतु से कहा कि तुम वट वृक्ष से एक फल ले आओ। आज्ञा पाकर मुनि पुत्र ने तुरत एक फल ले आया। पिता ने कहा कि इस फल को टुकड़ा करो। श्वेत केतु ने उसका टुकड़ा किया। पिता ने पूछा इसमें क्या है? पुत्र ने कहा-इसमें छोटे छोटे कई दाने हैं। पिता ने कहा-एक दाने को लेकर उसे भी तोड़ डालो और देखो कि क्या है? श्वेत केतु ने उसे तोड़ा और कहा कि इसमें दो दालें हैं। पिता ने पुनः पूछा उन दोनों दालों के बीच में क्या है? पुत्र ने कहा दोनों दालों के बीच में कुछ भी नहीं है। पिता ने कहा-यदि दोनों दालों के बीच में कुछ नहीं है तो वृक्ष कैसे हुआ? बीच में कुछ अवश्य है, वह अव्यक्त है। जिससे वृक्ष हुआ वह इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं है। बाहरी इन्द्रियों का राजा मन है। मन पर बुद्धि का शासन है। इसलिये बुद्धि तक इन्द्रियाँ मानते हैं! मन संकल्प विकल्प करता है। बुद्धि उसको कहते हैं जिसमें विवेचना शक्ति है। अहंकार उसको कहते हैं जिसमें अपने पन का ज्ञान हो। चित्त उसको कहते हैं जिसमें हिलाने-डुलाने की शक्ति हो। इसके हिलाये बिना मन संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता, बुद्धि विचार नहीं सकती और अहंकार का 'मैं हूँ' ज्ञान नहीं हो सकता। चित्त इन तीनों को

हिलाता है। इन इन्द्रियों से परमात्मा को नहीं पहचान सकते। इन्द्रियों के बाद कुछ और भी इस शरीर में है कि नहीं? तुम तो इसी शरीर में हो' तुम क्या लूले-लंगड़े हो? तुम इन्द्रियों से परतत्त्व हो। मन, बिना इन्द्रियों के कुछ काम नहीं कर सकता है। बिना कान के मन बाहर में कुछ सुन नहीं सकता। बिना आँख के मन बाहर में कुछ देख नहीं सकता। किन्तु तुम अपने को अपने से देख सकते हो और अपने से ही परमात्मा को भी देख सकते हो, जैसे समूचे शरीर को आँख से और आँख को फिर आँख से देखते हो। दादू दयाल जी का शब्द है—

"दादू जाने न कोई, संतन की गति गोई ॥ टेक ॥
अविगत अन्त अन्त अन्तर पट, अगम अगाध अगोई।
सुनी सुन्न सुन्न के पारा, अगुन सगुन नहिं दोई ॥
अंडब पिंड खंड ब्रह्मण्डा, सूरत सिंह समोई ।
निराकार आकार न जोती, पूरन ब्रह्म न होई ॥
इनके पार सार सोई पइहैं, तन मन गति पति सोई।
दादू दीन लीन चरन चित, मैं, उनकी सरनाई ॥"

सन्तों की चाल छिपी हुई होती है। वह कहाँ तक जाते हैं, किस होकर जाते हैं? वह अविगत तक जाते हैं। उस तक जाने का मार्ग अपने अंदर में है। उस पर चलते हुए सभी पर्दों को पार करते हैं। गो० तुलसी दास जी के बचन में है।

"माया बस मति मन्द अभागी।
हृदय जवनि का बहुविधी लागी ॥
ते सठ बस संशय करहीं।
निज अज्ञान राम पर धरहीं ॥
काम क्रोध मद लोभ रत, गृहा सक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप ॥"

उपर्युक्त दादू दयाल जी के शब्द में तीन शून्य बताये गये हैं—"सुन्नी, सुन्न, सुन्न के पारा।" इसी को हमारे गुरु महाराज बाबा देवी साहब कहते थे—अन्धकार का शून्य, प्रकाश का शून्य और केवल शब्द का शून्य। स्थूल अन्धकार मय शून्य, सूक्ष्म प्रकाश मय शून्य और कारण महा-कारण केवल शब्दमय शून्य। कतिपय विद्वान् कारण और महाकारण नहीं कहकर केवल कारण वा प्रकृति कहते हैं। प्रकृति कोई छोटी चीज नहीं है। इसका मंडल बहुत बड़ा है। किन्तु बहुत बड़ा मण्डल होने पर भी इसको अनन्त नहीं कह सकते। कुम्भकार पृथ्वी को कोड़ते हैं फिर भी पृथ्वी मौजूद है। जहाँ-जहाँ पृथ्वी कोड़ते हैं वहाँ-वहाँ पृथ्वी कँपती है। जितनी मिट्टी से बर्त्तन बनाते हैं उतनी मिट्टी उस बर्त्तन का कारण है। सभी कारणों को मिला दीजिये तो महाकारण है। जहाँ से सृष्टि होती है वह प्रकृति का विकृति अंश है। ऐसी बिकृति प्रकृति में अनेक हैं।

अन्धकार, प्रकाश और शब्द इन तीनों शून्यों के पार में जो है उसको निर्गुण वा सगुण कुछ भी नहीं कह सकते। यहाँ गुण का अर्थ त्रैगुण से है और गुण का अर्थ विशेषता और प्रशंसा भी होता है। गुण सहित नहीं, तो त्रैगुण नहीं,—निर्गुण। परन्तु जब निर्गुण भी नहीं, तब वह क्या है? यह बोध में आना बहुत कठिन होता है। परा प्रकृति चेतन और अपरा प्रकृति जड़ है। ये ही श्री मद्भगवद्गीता के अक्षर

पुरुष और क्षर पुरुष हैं। परन्तु पुरुषोत्तम को इन दोनों से श्रेष्ठ बतलाया गया है। विचारने पर गीतोक्त ज्ञानानुकूल ही सन्तों की वाणियों में भी सगुण-निर्गुण, क्षर-अक्षर के परे परमात्मा स्वरूप का ज्ञान जानने में आता है। ऐसे भी विद्वान हैं जो कहते हैं कि परमात्मा त्रैगुण रहित, पर दिव्यगुण सहित है। तो निस्त्रगुण्य होने के गुण से उसे युक्त करने पर वह दिव्य गुणधारी सगुण होता है, किन्तु केवल त्रैगुण रहित होने के कारण वह निर्गुण भी है। गो० तुलसी दास जी की विनय पत्रिका का शब्द है—

"अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत इति वासना धूप दीजै।" और संत कबीर साहब के वचन में हैं—

"है सब में सब ही ते न्यारा।
जीव जन्तु जल थल सबहीं में, शब्द वियापत बोलन हारा॥"

वह सब चर-अचर रूपों में अंश रूप है जैसे महदा-काश और मठा काश।

"उमा राम विषयक अस मोहा।
नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
जथा गगन घन पटल निहारी।
झाँपेउ भानु कहहु कुविचारी॥"
(गो० तुलसी दास जी)

सूर्य इतना बड़ा है कि वह धरती से कई हजार गुण बड़ा है। आकाश में जो बादल है वह सूर्य को ढँक लिया ऐसा कहना अज्ञानता है। वह बादल आपकी दृष्टि को ढँक लिया है न कि सूर्य को ढँक लिया है। जिस तरह बादल सम्पूर्ण सूर्य को नहीं ढँक सकता, वैसे ही माया परमात्मा को ढँक नहीं सकती परमात्मा सब जगह है, सब में है; जिसको आप पवित्र से पवित्र और घृणित से घृणित मानते हैं। आकाश में कहीं धुआँ, कहीं धूली उड़ रही है और कहीं अंधकार ही अंधकार है। किन्तु सब में होते हुए आकाश धुआँ, धूल और अंधकार से परे भी है। आकाश का वह रूप, जो उसका निज रूप है; अंधकार, धुआँ और स्थूल को पार करो फिर देखोगे। आकाश पर अन्धकार, धुआँ और धूल कुछ सट नहीं सकती। तीनों रहने पर भी वह निर्मल ही निर्मल रहता है। इसी तरह परमात्मा सब में रहने पर भी पवित्र और निर्लेप रहता है। सब में रहते हुए एक मण्डल में अंश रूप से रहता है। अंश का अर्थ टुकड़ा नहीं, अभिन्न अंश। इस तरह से ईश्वर सब में रहता हुआ सब से न्यारा, सब से निर्लेप है। आत्म गम्य है, इन्द्रिय गम्य नहीं। इन्द्रिय गम्य में व्यापक है। इन्द्रिय गम्य पदार्थ के भीतर वह छिपा है जिसे आप इन्द्रियों से नहीं जान सकते। जब तक उस पदार्थ के भीतर को पहचान नहीं हो तब तक परमात्मा का दर्शन कैसे हुआ? सगुण में हम कितना हूँ प्रेम करें, किन्तु वह स्थिर नहीं रह सकता। कभी न कभी नाश होगा ही। जो अजर अमर अविनाशी है, वह ध्रुव है, निश्चल है, वह कहीं से टसमस नहीं हो सकता। जो अनादि अनन्त है, वह अपरिमित शक्ति युक्त है, उसमें क्या गुण है, मेरी परिमित बुद्धि उसका गुण वर्णन नहीं कर सकती।

'निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति विलास मुनीस हरि हि बखानहीं।
प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख पावहीं॥'
(गो० तुलसी दास जी)

इसका पूरा-पूरा वर्णन कौन कर सकता है, वह अवर्णनीय है। ●

अखिल भारतीय संतमत सत्संग महासभा के ४८ वां विशेष अधिवेशन की कार्य्य-वाही

भंगहा के ४७ वाँ विशेष अधिवेशन के ६ महीने के बाद ही ४८ वाँ विशेष अधिवेशन बिहार राज्य के पूर्णियाँ मंडलान्तर्गत सिकली गढ़ धरहरा में दिनाङ्क २५, २६ तथा २७ नवम्बर १९५५ को समारोह पूर्वक मनाया गया। कटिहार अधिवेशन से ही सत्संग अधिवेशन में कुछ नवीनता आ गयी थी। कुछ सज्जनों के विचारानुसार सभा की आधुनिक परिपाटी सत्संग अधिवेशन में भी लायी गयी। अस्तु स्वागताध्यक्ष श्री हरबंशी सहाय जी मुंसफ मजिस्ट्रेट का स्वागत भाषण हुआ और पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। स्वागत गान एवं ईश विनय भी हुआ। भंगहा विशेष अधिवेशन में कुछ और बढ़ा। वहाँ अभिनन्दन पत्र भी पूज्य स्वामी जी महाराज के चरण कमल पर समर्पण किया गया। अब यह परिपाटी सी चल पड़ी। सुतरांग सिकलीगढ़ धरहरा विशेष अधिवेशन के अवसर पर भी ईश विनय स्वागत गान, अभिनन्दन पत्र एवं स्वागताध्यक्ष का भाषण सभी कुछ हुआ।

श्री मान पूज्य स्वामी जी महाराज की यद्यपि यह इच्छा कदापि नहीं रहती है कि पंडाल के अन्दर जो मंडप उनके बैठने के लिये बनाया जाता है उसे विशेष रूप से सजाया जाय तथापि उनके सेवकों की प्रबल इच्छा के कारण उसमें कुछ न कुछ सजावट आ ही जाती है। अस्तु इस बार भी मंडप साधारण तथा सादा पर सुन्दर एवं चित्ताकर्षक बनाया गया था शब्द विस्तारयंत्र, रोशनी तथा नलकूपों का प्रबन्ध संतोषजनक रहा। प्रतिनिधियों के रहने की व्यवस्था भी उत्तम थी। स्वयंसेवक शिविर, कीर्त्तन-मंडल-निवास, कार्य्यकर्त्ता एवं पदाधिकारियों के रहने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था। स्वागत समिति की ओर से प्रबन्ध में किसी प्रकार की कमी नहीं की गयी थी। इसबार रसनचौकी नहीं मंगायी गयी थी पर उसके बिना कोई कमी नहीं मालूम होती थी। स्वयंसेवकों की सेवा तथा आचरण (decipline) प्रशंसा के योग्य था। उनके प्रधान अध्यक्ष श्री उमेश नारायण मल्लिक जी विशेष कार्यकुशल व्यक्ति थे इसलिए उनके नायकत्व में अधिवेशन के प्रबन्ध में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। सभी लोगों ने स्वयंसेवकों की सेवा की मुक्त कंठ से सराहना की। इसबार का अधिवेशन श्री मान पूज्य गुरूदेव के निवास स्थान एवं सत्संग-मंदिर के निकट ही था इसलिए सत्संगियों एवं दर्शकों की भीड़ प्रत्येक बार से अधिक रही। अनुमान है कि लगभग बीस हजार लोग सत्संग अधि-

वेशन के अवसर पर एकत्रित हुए थे। धर्म्मपुर के अनेक विशिष्ट व्यक्ति भी पूज्य स्वामी जी महाराज के दर्शन करने एवं उनके सदुपदेश से लाभ उठाने आये थे। स्थानीय बनमनखी कालेज के अध्यापकगण भी नित्य प्रति सत्संग में सम्मिलित होते थे। पटना साइन्स कालेज के प्रोफेसर श्री दशरथ प्रसाद भी सत्संग में आये थे।

श्री मान पूज्य स्वामी श्री मेंहीं दास जी महाराज के प्रवचन बराबर कार्यक्रमानुसार दो दिनों तक हुए। पर बनमंखी बाजार आदि बन्द रहने के कारण तीसरे दिन भी दोपहर को उपदेश हुआ। जनता पर इसका प्रभाव यथेष्ट पड़ा और अधिवेशन के समाप्त होने के पश्चात लगभग तीन सौ लोगों ने पूज्य स्वामी जी महाराज से भजन भेद लिया।

दूसरे दिन कुछ तीर्थों का अनुभव और स्वामी जी की महत्ता पर श्री सौरभ जी, 'सत्संगियों को संत-साहित्य नित्य पाठ करना चाहिये' पर उपसभापति डा० राम प्रसाद दासजी तथा 'स्वामी जी द्वारा प्रचारित मानस जाप की महत्ता' पर श्री चन्द्रधर प्रसाद नन्दक्युलियर एम. ए. के भाषण हुए। इसके अतिरिक्त कोशी कालेज खगड़िया के प्रो० विश्वानन्द जी महोदय ने भी सुन्दर ललित भाषा में धर्मोपदेश किया। शांति-संदेश मासिक पत्र तथा अभिनन्दन ग्रंथ के सम्बंध में श्री लक्ष्मी प्रसाद चौधरी, प्रधानमंत्री ने सत्सगियों एवं अन्याम्य ग्राहकों से निवेदन करते हुए कहा कि कार्यकारिणी समिति इन विषयों पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही है और पूर्ण आशा है कि शांतिसंदेश प्रत्येक मास प्रकाशित होता रहेगा और अभिनन्दन ग्रन्थ के मनिहारी अधिवेशन तक प्रकाशित करने की भरसक कोशिश की जायगी। नियमानुसार दूसरे दिन ही धर्मकोष के लिये दान मांगना चाहिये था पर अधिक समय हो जाने के कारण उस दिन न होकर तीसरे दिन हुआ। यहाँ की भीड़ देखते हुए यद्यपि धर्मको कोष में जो कुछ प्राप्त हुआ वह थोड़ा ही है तथापि अन्य अधिवेशनों में प्राप्तदान के मुकाबले यह दान बहुत अधिक है। संग्रह कर्त्ताओं के नाम तथा आंकड़े नीचे दिये जाते हैं। इसबार विशेश दान श्रीगुरु प्रसाद साह जी द्वारा प्राप्त हुआ। इन्होंने ही मुरादाबाद वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर धर्मकोश में १२५) और इसबार के भी विशेश अधिवेशन के मौके पर १११) दिया है। यह दान इनका विशेश दान है क्योंकि धर्मकोष में आज तक किसी सज्जन ने इतना दान एक मुस्त नहीं दिया है। इसके अतिरिक्त शांतिसंदेश के प्रकाशन के लिए भी इन्होंने १२५) रु० दिया जिसके लिए भी ये विशेश धन्यवाद के पात्र हैं।

धर्म कोष के लिए दान मांगने वाले सज्जनों के नाम तथा प्राप्त धन के आंकड़े :—

१	श्री चन्द्रधर प्रसादजी नन्दक्युलियर	८६॥।≡
२	,, रामदेव जी शर्मा (मनिहारी)	६६॥।-)
३	,, नारायण जी अग्रवाल (मनिहारी)	६१≡)
४	,, जयदेव प्रसाद सिंह जी (दयालपुर)	५६)॥
५	,, जगदीश प्रसाद जी (परेल)	५४।-)।
६	,, लच्छन दास जी (कनखुदिया)	४६॥।-)॥
७	,,	३७॥।-)॥
८	,, माधो दास जी (रामगंज)	३५॥≈

९ श्री कमलो दास जी (बेलदौर) २४।।≈)।।
१० ,, रामनन्दन प्रसाद जी (पूर्णियाँ) २४≡
११ ,, श्री मति कौशल्या देवी (धरहरा) ७≈)।।
१२ ,, फुटकर प्राप्त (पीछे) १६।।≈)।
१३ ,, श्री गुरु प्रसाद साहजीद्वारा विशेष दान १११

नोट ६४१।।)।

बाद फूटा तथा खराब जाली द्रव १४–)

बांकी ६२७।।≡)।

अन्यान्य अधिवेशनों में धर्म कोष के लिये प्राप्तदान का ब्यौरा :—

१ धरहरा विशेष अधिवेशन में प्राप्त ६२७।≡)।
२ कटिहार वार्षिक अधिवेशन में प्राप्त ५६४)
३ भंगहा विशेष अधिवेशन में प्राप्त ३८३)
४ झालीघाट वार्षिक अधिवेशन में प्राप्त २६२–)
५ खगड़िया वार्षिक अधिवेशन में प्राप्त २८७।।≡।।
६ कोरिका वार्षिक अधिवेशन में प्राप्त २८०)।।।
७ मुरादाबाद वार्षिक अधिवेशन में प्राप्त २२७।–
८ खापुर विशेष अधिवेशन में प्राप्त १७२।–।।।

ऊपर के आंकड़े से स्पष्ट है कि इस वार धर्म कोष में सबसे अधिक दान प्राप्त हुआ।

तीसरे दिन याने दिनांक २७ नवम्बर १९५५ की रात को तथा चौथे दिन के प्रातः कार्यकारिणी समिति की दूसरी बैठक उसी पंडाल में हुई जिसमें २१ सदस्य तथा पदाधिकारीगण सम्मिलित हुए। माननीय उपसभापति जी के सभापतित्व में माननीय सम्पादक शांति-संदेश के उस पत्र पर विचार विमर्ष हुआ जिसमें उन्होंने सम्पादन कार्य से अपनी मुक्ति चाही थी। अनेक बहस मुहासे के बाद निश्चय हुआ कि समयाभाव के कारण शांतिसंदेश के प्रकाशन में सम्पादक महोदय यथेष्ठ समय नहीं दे सकते हैं। अस्तु उनका बोझ हल्का करने के उद्देश्य से पत्र के प्रकाशन तथा प्रबन्ध का भार झण्डापुर विद्यालय के प्रधान अध्यापक श्री उदित नारायण जी चौधरी को दिया गया पर पत्रिका का सम्पादन सम्पादक जी ही पूर्ववत किया करेंगे। बांकी सभी काम व्यवस्थापक (मैनेजर) महोदय द्वारा उपसमिति के सहयोग से हुआ करेगा। जिसकी बैठक समय समय पर हुआ करेगी।

उपसमिति के सदस्य निम्नोक्त हैं।

१ श्री चन्द्रधर प्र० जी नन्दक्युलियर एम० ए० कहलगांव।
२ ,, महावीर लाल दासजी 'संतसेवी', मनिहारी।
३ ,, उदित नारायण जी चौधरी, व्यवस्थापक, संयोजक।
४ ,, शिव गोपाल लाल जी, चार्यमैन, (जमालपुर।)
५ ,, लक्ष्मी प्रसाद चौधरी, प्रधान मंत्री।

अन्त में स्वागत कारिणी समिति, नगर निवासियों, स्वयंसेवकों तथा अन्यान्य सहयोगियों को धन्यवाद देकर ४८ वाँ अधिवेशन निर्विघ्न समाप्त किया गया।

४८वां अखिल भारतीय संतमत सत्संग महासभाकी कार्य्य कारिणी समिति की दूसरी बैठक

४८वाँ अ० भाँ० संतमत सतसंग महासभा की कार्य्य कारिणी समिति की दूसरी बैठक दिनाङ्क २७ नवम्बर १९५५ रविवार को सिकली गढ़ धरहरा जिला पूर्णिया (बिहार) के विशेष अधिवेशन के अवसर पर रात को तथा दूसरे दिन प्रातः नीचे लिखे सदस्यों की उपस्थिति में हुई श्री प्रो० विश्वानन्द जी एम० ए० बी० एल० सम्पादक शांति सन्देश (२) श्री बुद्ध कुँवर जी (३) श्री डा० रामप्रसाद दास जी उपसभा पति (४) श्री बाबू लाल सिंह जी सहायक मंत्री (५) श्री भागवत प्रसाद सिंह जी (६) श्री डा० लक्ष्मी प्रसाद शर्मा जी (७) श्री नरसिंह पोद्दार जी (८) श्री उदित नारायण जी चौधरी प्रधान अध्यापक (९) श्री चक्रधर प्रसाद जी (१०) श्री भागवत प्रसाद जायसवालजी (११) श्री लक्ष्मी प्रसाद चौधरी, प्रधान मंत्री (१२) श्री मांगन साह जी (१३) श्री टीकमल जी (१४) श्री मोती दास जी (१५) श्री श्री कान्त सिंह जी (१६) श्री जयदेव सिंह जी (१७) श्री रेहमलाल दास जी (१८) श्री शिवेश्वर प्रसाद शर्मा जी (१९) श्री नारायण प्रसाद जी अग्रवाल (२०) श्री लच्छन दास जी (२१) श्री चन्द्रधर जी नन्दकुलियारा आमंत्रित सज्जनों के नाम—(१) शिव गोपाल दास जी (२) श्री रघुनन्दन प्रसाद जी (३) श्री देवकी नन्दन जी (४) श्री गंगा बारीक जी (५) श्री रामदेव शर्मा जी (६) श्री महाबीरलाल दास जी 'संतसेवी''

श्री मोहनलाल जी साहब (मुरादाबाद) सभापति के अनुपस्थित रहने के कारण उपसभापति श्री मान डाक्टर रामप्रसाद दास जी महोदय के सभापतित्व में बैठक की कार्य्यवाही सम्पन्न हुई।

श्री मान प्रो० विश्वानन्द जी एम० बी० एल० सम्पादक शान्ति सन्देश के दिनाङ्क १०-११-५५ का पत्र जिसमें उन्होंने शांति सन्देश के सम्पादन से अपनी मुक्तिचाही थी प्रधान मंत्री द्वारा उपस्थित किया गया। इस विषय पर अनेक विचार विमर्ष हुए। अन्त में निश्चय हुआ कि श्री मान सम्पादक महोदय से निवेदन किया जाय कि वे पूर्व की नाई शांति सन्देश का सम्पादन करने की कृपा करें; जिसे उन्होंने स्वीकार किया इस कार्य्य में उनकी सहायता करने के लिए श्री मान चन्द्रधर प्रसाद नन्दकुलियार जी एम० ए० सहायक सम्पादक चुने गये; जिन्होंने भी उनकी सहायता करने का वचन दिया। समयाभाव के कारण माननीय सम्पादक महोदय को जो परेशानी पत्र को छपाने, डाक से भेजवाने, रुपये पैसे का हिसाब रखने में होती थी उसके लिए झन्डापुर- विद्यालय प्रधानाध्यापक माननीय

(शेषांश पृष्ठ ३२ पर

योग

● स्वामी ओमानन्द तीर्थ, पुष्कर ●

योग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की फैली हुई भ्रान्तियों के निवारण तथा उसके वास्तविक स्वरुप को समझा देना अत्यावश्यक है। मोटे शब्दों में योग स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना अर्थात् बाहर से अन्तर्मुख होना है। चित्त की वृत्तियों द्वारा हम स्थूलता की ओर जाते हैं। (आत्म तत्त्व से प्रकाशित चित्त, अहंकार रूप वृत्ति द्वार, अहंकार इन्द्रियों और तन्मात्राओं रुप वृत्तियों द्वारा, तन्मात्रायें सूक्ष्म और स्थूल मूल, और इन्द्रियां विषयों की वृत्तियों द्वारा बहिर्मुख हो रही हैं)। जितनी वृत्तियां बहिर्मुख होती जायेंगी उतनी ही उनमें रज और तम की मात्रा बढ़ती जायेगी और उससे उल्टा जितनी वृत्तियां अन्तर्मुख होती जायेंगी उतना ही रज और तम के तिरोभाव पूर्वक सत्त्व का प्रकाश बढ़ता जायेगा। जब कोई भी वृत्ति न रहे तब शुद्ध परमात्म स्वरुप शेष रह जाता है।

योग के तीन अन्तर्विभाग:—योग के मुख्य तीन अन्तर्विभाग किये जा सकते हैं। ज्ञानयोग, उपासनयोग और कर्मयोग।

ज्ञानयोग:— भौतिक पदार्थों को जान लेना अर्थात् सांसारिक ज्ञान और विज्ञान ज्ञानयोग नहीं है। बल्कि तीनों गुणों और इनसे बने हुए सारे पदार्थों से परे अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, और आनन्द मय कोश अथवा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, अहंकार और चित्त से परे गुणातीत शुद्ध परमात्म तत्त्व को जिसके द्वारा इन सब में ज्ञान, नियम और व्यवस्था पूर्वक क्रिया हो रही है, संशय विपर्यय रहित पूर्ण रूप से जान लेना ज्ञान योग है। यह ज्ञान योग केवल पुस्तकों के पढ़ लेने या शब्दों द्वारा सुन लेने से ही नहीं प्राप्त हो सकता। इसके लिये उपासना योग की आवश्यकता होती है।

उपासना योग:—एक प्रत्यय का प्रवाह करना अर्थात् मन चित्त की वृत्तियों को सब ओर से हटा कर केवल एक लक्ष्य पर ठहराने का नाम उपासना है। किसी सांसारिक विषय की प्राप्ति के लिए इस प्रकार एक प्रत्यय का प्रवाह करना उपासना कहा जा सकता है उपासना योग नहीं। यह उपासना योग तभी कहलावेगा जब इसका मुख्य लक्ष्य केवल शुद्ध परमात्मस्वरुप की प्राप्ति हो। इसको और स्पष्ट शब्दों में यूँ समझना चाहिए कि जिस प्रकार जल के सर्वत्र भूमि में व्यापक रहते हुए भी उस की शुद्ध धारा को किसी स्थान विशेष से खोदने पर निकाला जाता है, इसी प्रकार परमात्म तत्व के सर्वत्र व्यापक रहते हुए भी इसके शुद्ध स्वरुप को किसी स्थान विशेष से

अन्तर्मुख होकर प्राप्त किया जा सकता है। यह जो चित्त को किसी विशेष देश (विषय लक्ष्य ध्येय) पर ठहराकर शुद्ध परमात्म स्वरुप को प्राप्त करने का यत्न किया जाता है, वही उपासनायोग है। इस एकाग्रता रुप उपासना को सम्प्रज्ञात समाधि तथा सम्प्रज्ञात योग कहते है। इसके पश्चात जो सर्व वृत्तियों के निरोध होने पर शुद्ध परमात्म स्वरुप में अवस्थिति है, वह ज्ञान योग है। इसी को असम्प्रज्ञात समाधि तथा असम्प्रज्ञात योग कहते हैं।

इसके लिए किसी एकान्त, निर्विघ्न शुद्ध स्थान में सिर, गर्दन और कमर को सीधा एक रेखा में रखते हुए किसी स्थिर सुख आसन से बैठना, प्राणों की गति धीमा करना और इन्द्रियों को बाहर के विषयों से हटाकर चित्त के साथ अ मुंख करना आवश्यक है। फिर यह देखना होगा कि अन्तर्मुख होने के लिए किस स्थान को लक्ष्य बनाया जावे। वैसे तो परमात्मा सर्वत्र व्यापक हैं किन्तु उनके शुद्ध स्वरुप तक पहुँचने के लिए अपने ही शरीर में किसी स्थान को लक्ष्य बनाने में सुगमता रहती है। इस में पाँच "विषयवर्ती प्रवृत्ति" के स्थान हैं। अर्थात् नसिका अग्रभाग गन्ध का, जिह्वा का अग्रभाग रसका, तालू रुप का, जिह्वा का मध्य भाग स्पर्श का और जिह्वा का मूल भाग शब्द का स्थान है। इन से भी अधिक प्रभाव शाली "विशोका ज्योतिष्मति" प्रवृत्ति के सुषुम्ना नाड़ी में विद्यमान मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार चक्र हैं। सुषुम्ना जो गुदा निकट से मेरु दण्ड के भीतर होती हुई मस्तिष्क के ऊपर तक चली गई है सर्व श्रेष्ठ नाड़ी है। यह सत्व प्रधान, प्रकाश मय और अद्भुतशक्ति वाली है। यही सूक्ष्म प्राणों तथा अन्य सब शक्तियों का स्थान है। इसमें बहुत से सूक्ष्म शक्तियों केन्द्र हैं, जिनमें अन्य सूक्ष्म नाड़ियां मिलती हैं। इन शक्तियों के केन्द्रों को पद्म, कमल तथा चक्र कहते हैं। इनमें उपर्युक्त सात मुख्य हैं। उनमें भी मणिपूरक, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार विशेष महत्व के हैं। किस के लिए ध्यान के वास्ते कौन सा स्थान अधिक उपयोगी हो सकता है, यह उस मार्ग के अनुभवी ही बतला सकते हैं।

जिस प्रकार तली तोड़कर कुएँ के खोदते समय कई प्रकार मिट्टी की तहें निकलती हैं ऐसा ही ध्यान अवस्था में होता है। यहां भी स्थूल भूत, सूक्ष्म भूत, अहंकार और अस्मिता (आत्मा से प्रकाशित चित्त) ये चार प्रकार के तीनों गुणों की तहें आती हैं। जब स्थूल भूत अथवा उनसे सम्बन्ध रखने वाले विषय सामने आवें उसको वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, जब सूक्ष्म भूत अथवा उनसे सम्बन्धित विषय उपस्थित हों उसको विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि, जब इन दोनों विषयों से परे केवल 'अहमास्मि' वृत्ति रह जावे उसको आनन्दानुगत और जब इससे भी परे केवल 'अस्मि' वृत्ति रह जावे उसको अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

जिस प्रकार सारी मिट्टी की तहों के समाप्त होने पर जल को रेत से अलग किया जाता है इसी प्रकार गुणों की इन चारों तहों के पश्चात